अथ पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

॥ छन्दः शिखरिणी ॥

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः सरस्वत्य-
ाग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया ॥ इयं ख्यातिर्यस्य प्रकटगुण-
ैद्रपरशरणास्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः ॥ १ ॥

॥ श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितः ॥

॥ वेदमन्त्राणां संस्कृतप्राकृतभाषार्थसहितः ॥

श्रीयुत विक्रमादित्यमहाराजस्य चतुस्त्रिंशोत्तरे एकोनविंशे
संवत्सरे भाद्रपौर्णमायां समापितः ॥

सन्ध्योपासनाग्निहोत्रपितृवैश्वदेवबलिवैश्वदेवातिथिपूजानित्यकर्मानुष्ठानाय
संशोध्य यन्त्रापितः

अस्य ग्रन्थस्याधिकारः सर्वथा स्वाधीनएव रक्षितः ॥

॥ काश्यां लाजरसकम्पन्याख्यस्य यन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९३४ ।

मूल्यं ।

मूल्य	डाक खर्च	स्वामिनिर्मित ग्रन्थनाम	कहां से मिले
२॥)	।-)	सत्यार्थप्रकाश	स्वामीदयानन्द स्वामीजी के पास चार पुस्तकें मिलेंग
१॥=)	।)	संस्कारविधि	
-)॥	-)	आर्योद्देश्यरत्नमाला	
॥)	-)	आर्य्याभिविनय	
४॥)		वेदभाष्य का वार्षिकमूल्य	ये दोनों पुस्तक स्वामीजी और लाजरस कंपनी के पास से काशी मे
।=)	-)	पंचमहायज्ञविधि	

उक्त पुस्तकें
दास जी के पास र

ओ३म
गुरु विरजानन्द दण्डी
संदर्भ पुस्तकालय
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र
वर्गीकरण नम्बर 327
पु. परिग्रहण क्रमांक ... .

अथ सन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधिः ।

यह पुस्तक नित्य कर्म विधि का है इस में पंचमहायज्ञ का विधान है जिन के ये नाम हैं कि ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ, और नृ यज्ञ । उन के मंत्र, मंत्रों के अर्थ, और जो जो करने का विधान लिखा है सो सो यथावत् करना चाहिये । एकान्त देश में अपने आत्मा मन और शरीर को शुद्ध और शांत कर के उस उस कर्म में चित्त लगा के तत्पर होना चाहिये इन नित्य कर्मों के फल ये हैं कि ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्य्यों की सिद्धि होना उस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये सिद्ध होते हैं । इन को प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है ॥

अथ तेषां प्रकारः । तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गतसन्ध्याविधानं प्रोच्यते ॥ तत्र सन्ध्याशब्दार्थः । सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परंब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या ॥ तत्र रात्रिंदिवयोः सन्धिवेलाया-मुभयोस्सन्ध्ययोः सर्वैर्मनुष्यैरवश्यं परमेश्वरस्यैव स्तुतिप्रार्थनो-पासनाः कार्य्याः ॥ आदौ शरीरशुद्धिः कर्त्तव्या ॥ सा बाह्या । जलादिना । आभ्यन्तरारागद्वेषासत्यादित्यागेन ॥ अत्र प्रमाणम् । अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति । इत्याहमनुः अ० ५ श्लो० १०९ शरीरशुद्धेस्सकाशादात्मान्तःक रणशुद्धिरवश्यं सर्वैस्सम्पादनीया ।

तस्यास्सर्वोत्कृष्टत्वात्परब्रह्मप्राप्त्येकसाधनत्वाच्च ॥ ततो मार्ज्जनं कुर्य्यात् ॥ नैवेश्वरध्यानादावालस्यं भवेदेतदर्थं शिरोनेत्रादुपरि जलप्रक्षेपणं कर्त्तव्यम् । नोचेन्न ॥

अब संध्योपासनादि पांच महायज्ञों की विधि लिखी जाती है और उस में के मंत्रों का अर्थ भी लिखा जाता है ॥ पहिले संध्या शब्द का अर्थ यह है कि (संध्यायंति) भली भांति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाय परमेश्वर का जिस में वह संध्या सो रात और दिन के संयोग समय दोनों संध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये। पहिले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि और राग द्वेष आदि के त्याग से भीतर की शुद्धी करनी चाहिये क्योंकि मनुजी ने ५ अध्याय के १०९ श्लोक (अद्भिर्गात्राणि इत्यादि) में यह लिखा है कि शरीर जल से मन सत्य से जीवात्मा विद्या और तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। परन्तु शरीर शुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि सब को अवश्य करनी चाहिये। क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर प्राप्ति का एक साधन है। तब कुशा वा हाथ से मार्जन करे अर्थात् परमेश्वर का ध्यान आदि करने के समय किसी प्रकार का आलस्य न आवे इस लिये शिर और नेत्र आदि पर जल प्रक्षेप करे यदि आलस न हो तो न करना ॥

पुनर्न्न्यूनान्न्यूनास्त्रीन् प्राणायामान् कुर्य्यात् ॥ आभ्यंतरस्थं वायुं नासिकापुटाभ्यां बलेन बहिर्निस्सार्य्य यथाशक्ति बहिरेव स्तम्भयेत् पुनः शनैश्शनैर्गृहीत्वा किञ्चित्तमवरुध्य पुनस्तथैव

बहिर्न्निस्सारयेदवरोधयेच्चैवं त्रिवारं न्यूनातिन्यूनं कुर्य्यादनेनात्ममनसोः स्थितिं सम्पादयेत् ॥ ततो गायत्रीमंत्रेण शिखां बद्ध्वा रक्षाञ्च कुर्य्यात् ॥ इतस्ततः केशानपतेयुरेतदर्थं शिखाबन्धनम् ॥ प्रार्थितस्सन्नीश्वरस्सत्कर्म्मसु सर्वत्र सर्वदा रक्षेन्नः । एतदर्थं रक्षाकरणम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

फिर कमसे कम तीन प्राणायाम करे अर्थात् भीतर के वायु को बलसे बाहर निकाल कर यथा शक्ति बाहर ही रोक दे फिर शनैः २ ग्रहण करके कुछ चिर भीतर ही रोक के बाहर निकाल दे और वहां भी कुछ रोके इस प्रकार कमसे कम तीन बार करे। इस से आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करे । इस के अनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बांध के रक्षा करे इस का प्रयोजन यह है कि इधर उधर केश न गिरें सो यदि केशादि पतन न हो तो न करे। और रक्षा करने का प्रयोजन यह है कि परमेश्वर प्रार्थित होकर सब भले कामों में सदा सब जगह में हमारी रक्षा करें ॥

॥ अथाचमनमन्त्रः ॥

ओं शन्नोदेवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये ॥ शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ यजु० अ० ३६ मं० १२ ॥

॥ भाष्यम् ॥

आप्लृव्याप्तौ । अस्माद्धातोरप्शब्दः सिध्यति । दिवुक्रीडाद्यर्थः । अप्शब्दोनियतस्त्रीलिंगोबहुवचनान्तश्च (शन्नोदे०)

देव्यआपः सर्वप्रकाशकस्सर्वानन्दप्रदस्सर्वव्यापकईश्वरः (अभीष्टये) इष्टानन्दप्राप्तये (पीतये) पूर्णानन्दभोगेन तृप्तये (नः) अस्मभ्यं (शं) कल्याणं (भवन्तु) अर्थात् भावयतु प्रयच्छतु । ता आपो देव्यः स एवेश्वरः (नः) अस्मभ्यं (शंयोः) शम् अभिस्रवन्तु अर्थात् सुखस्याभितः सर्वतो वृष्टिं करोतु । अप्शब्देनेश्वरस्य ग्रहणमत्र प्रमाणम् ॥ यच्च लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्मजना विदुः ॥ असच्च यत्र सच्चान्तस्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥ अथ० कां० १० अनु० ४ व० २२ मं० ॥ १० ॥ अनेन वेदमंत्रप्रमाणेनाप्शब्देन परमात्मनोत्रग्रहणं क्रियते ॥ एवमनेन मंत्रेणेश्वरं प्रार्थयित्वा चिराचामेत् ॥ जलाभावश्चेन्नैव कुर्य्यात् । आचमनमप्यालस्यस्य कण्ठस्यकफस्य निवारणार्थम् ।

॥ भाषार्थ ॥

अब आचमन करने का मंत्र लिखते हैं (ओं शंनोदेवी इत्यादि) इस का अर्थ यह है कि आप्लृव्याप्तौ इस धातु से अप्शब्द सिद्ध होता है वह सदा स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनान्त है । दिवु धातु अर्थात् जिस के क्रीड़ा आदि अर्थ हैं उससे देवी शब्द सिद्ध होता है (देव्य आपः) सब का प्रकाशक सब को आनन्द देनेवाला और सर्व व्यापक ईश्वर (अभीष्टये) मनोवाञ्छित आनन्द के लिये और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये (नः) हम को (शं) कल्याणकारी (भवन्तु) हो अर्थात् हमारा कल्याण करें (ताः आपो

देव्यः) वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) सर्वथा वृष्टि करे। इस प्रकार इस मंत्र से परमेश्वर की प्रार्थना कर के तीन आचमन करे यदि जल न हो तो न करे। आचमन से गला के कफादि की निवृत्ति होना प्रयोजन है॥ यहां अप् शब्द से ईश्वर के ग्रहण करने में प्रमाण॥ (यत्र लोकांश्च) जिस में सब लोक लोकान्तर (कोश) अर्थात् सब जगत् का कारणरूप खजाना जिस में असत् अदृश्यरूप आकाशादि और सत् स्थूल प्रकृत्यादि सब पदार्थ स्थित हैं उसी का नाम अप् है और वह नाम ब्रह्म का है तथा उसी को स्कंभ कहते हैं वह कौन सा देव और कहां है इस का यह उत्तर है कि (अन्तः) सब के भीतर व्यापक होके परिपूर्ण हो रहा है उसी को तुम उपास्य पूज्य और इष्टदेव जानो इस वेदमंत्र के प्रमाण से अप् नाम ब्रह्म का है॥

॥ अथेन्द्रियस्पर्शः ॥

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे॥

॥ भाष्यम् ॥

एभिः सर्वेश्वरप्रार्थनया स्पर्शः कार्य्यः। सर्वेश्वरकृपयेन्द्रियाणि बलवन्तितिष्ठन्त्वित्यभिप्रायः॥

॥ अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्ज्जनमन्त्राः ॥

ओम्भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

॥ भाष्यम् ॥

ओमित्यस्य भूर्भुवः स्वरित्येतासां चार्थोगायत्रीमंत्रार्थे द्रष्टव्याः । महरर्थात् सर्वेभ्यो महान् सर्वैः पूज्यश्च । सर्वेषां जनकत्वाज्जनः परमेश्वरः । दुष्टानां संतापकारकत्वात्स्वयं ज्ञानस्वरूपत्वात् (यस्य ज्ञानमयं तपः) इति वचनस्य प्रामाण्यात् तप ईश्वरः । यदविनाशियस्य कदाचिद्विनाशो न भवेत् तत्सत्यं ब्रह्मव्यापकमिति बोध्यम् । इतीश्वरनाममिर्मार्जनं कुर्य्यात् ॥

॥ अथ प्राणायाममंत्राः ॥

॥ मू० ॥

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् । तैत्ति० प्रपा० १० अनु० १७ । इति प्राणायाममन्त्राः ॥

॥ भाष्यम् ॥

एतेषामुच्चारणार्थविचारपुरस्सरं पूर्वोक्तप्रकारेण प्राणायामान् कुर्य्यात् ॥

॥ भाषार्थ ॥

अथेन्द्रियस्पर्शः (ओं वाक् वागित्यादि) इस प्रकार से ईश्वर की प्रार्थना पूर्वक इन्द्रियों का स्पर्श करे । इस का अभिप्राय यह है कि ईश्वर की प्रार्थना से सब इन्द्रिय बलवान् रहें । अब ईश्वर की प्रार्थना पूर्वक मार्ज्जन के मंत्र लिखे जाते हैं (ओं भूः पुनातु शिरसीत्यादि०) ओंकार भूः भुवः और स्वः इनके अर्थ गायत्री मंत्र के अर्थ में देखलेना (महः) सब से बड़ा और सब का पूज्य होने से परमेश्वर को महत् कहते हैं (जनः) सब जगत् के उत्पादक होने से परमेश्वर का जन नाम है (तपः) दुष्टों को संतापकारी और ज्ञानस्वरूप होने से ईश्वर को तप कहते हैं। क्योंकि (यस्ये-त्यादि) उपनिषद् की श्रुति इसमें प्रमाण है (सत्यं) अविनाशी होने से परमेश्वर का सत्य नाम है । और व्यापक होने से (ब्रह्म) नाम परमेश्वर का है । अर्थात् पूर्व मंत्रोक्त सब नाम परमेश्वर ही के हैं । इस प्रकार ईश्वर के नामों के अर्थों का स्मरण करते हुये मार्जन करें । अब प्राणायाम के मन्त्र लिखते हैं (ओं भूरित्यादि) इनके उच्चारण और अर्थ विचारपूर्वक उस प्रकार के अनुसार प्राणायामों को करे ॥

॥ मू० ॥

अथेश्वरस्य जगदुत्पादनद्वारा स्तुत्याघमर्षणमन्त्रा अर्थात् पापदूरीकरणार्थाः ॥

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रा-त्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि

सम्वत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ सूर्य्याचन्द्रमसौ धता यथा पूर्वमकल्पयत् ॥ दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥ ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(धाता) दधाति सकलं जगत् पोषयति वा स धातेश्वरः (वशी) वशं कर्तुं शीलमस्य सः (यथापूर्वम्) यथा तस्य सर्वज्ञे विज्ञाने जगद्रचनज्ञानमासीत् पूर्वकल्पसृष्टौ यथा रचनं कृतमासीत्तथैव जीवानां पुण्यपापानुसारतः प्राणिदेहानकल्पयत् (सूर्य्याचन्द्रमसौ) यौ प्रत्यक्षविषयौ सूर्य्यचन्द्रलोकौ (दिवम्) सर्वोत्तमं स्वप्रकाशमग्न्याख्यम् । (पृथिवीं) प्रत्यक्षविषया (अन्तरिक्षम्) अर्थाद् द्वयोर्लोकयोर्मध्यमाकाशं तच्चस्थाल्लोकांश्च (स्वः) मध्यस्थं लोकम् (अकल्पयत्) यथापूर्वं रचितवान् । ईश्वरज्ञानस्यापरिणामित्वात् पूर्णत्वादनन्तत्वात्सर्वदैकरसत्वाच्च नैव तस्य वृद्धिक्षयव्यभिचाराश्च कदाचिद् भवन्ति । अतएव यथा पूर्वमकल्पयदित्युक्तम् स एव वशीश्वरः (विश्वस्य मिषतः) सहजस्वभावेन (अहोरात्राणि) रात्रेर्दिवसस्य च विभागं यथापूर्वं (विदधत्) विधानं कृतवान् तस्य धातुर्वशिनः परमेश्वरस्यैव (अभीद्धात्) अभितः सर्वतः इद्धात् दीप्तात् ज्ञान-

मयात् (तपसः) अर्थादनन्तसामर्थ्यात् (ऋतं) यथार्थं सर्वविद्याधिकरणं वेदशास्त्रं (सत्यं) त्रिगुणमयं प्रकृत्यात्मकमव्यक्तं स्थूलस्य सूक्ष्मस्य जगतः कारणं चाध्यजायत यथा पूर्वमुत्पन्नम् (ततो रात्री) या तस्मादेव सामर्थ्यात्प्रलयानन्तरं भवति सा रात्रिरजायत यथा पूर्वमुत्पन्नासीत् ॥ तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १७ मं० ३ । अग्रे सृष्टेः प्राक्तमोन्धकारेणवासीत् तेन तमसा सकलं जगदिदमुत्पत्तेः प्राग्गूढं गुप्तमर्थाददृश्यमासीत् । (ततः समु०) तस्मादेव सामर्थ्यात्पृथिवीस्थोन्तरिक्षस्थश्च महान् (समुद्रः) अजायत यथापूर्वमुत्पन्नआसीत् (समुद्रादर्णवात्) पश्चात् संवत्सरः क्षणादिलक्षणः कालोध्यजायत । यावज्जगतावत्सर्वं परमेश्वरस्य सामर्थ्यादेवोत्पन्नमित्यवधार्य्यम् । एवमुक्तगुणं परमेश्वरं संस्मृत्य पापाद्भीत्वा ततो दूरे सर्वैर्जनैः स्थातव्यम् । नैव कदाचित्केन चित्स्वल्पमपि पापं कर्त्तव्यमितीश्वराज्ञास्तीति निश्चेतव्यम् । अनेनाघमर्षणं कुर्य्यादर्थात्पापानुष्ठानं सर्वथा परित्यजेत् ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब अघमर्षण अर्थात् हे ईश्वर तू जगदुत्पादक है इत्यादि स्तुति करके पाप से दूर रहने के उपदेश का मंत्र लिखते हैं। (ओं ऋतञ्च सत्यमित्यादि०) इसका अर्थ यह है कि (धाता)

सब जगत् का धारण और पोषण करने वाला और (वशी) सब का वश करने वाला परमेश्वर (यथा पूर्वम्) जैसा कि उसके सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था और जिस प्रकार पूर्व कल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी और जैसे जीवों के पुण्य पाप थे उनके अनुसार से ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं (सूर्या चन्द्रम्यसौ) जैसे पूर्व कल्प में सूर्य चन्द्र लोक रचे थे वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं (दिवं) जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा था वैसा ही इस कल्प में भी रचा है तथा (पृथिवीं) जैसी प्रत्यक्ष दीखती है (अन्तरिक्षं) जैसा पृथिवी और सूर्य्य लोक के बीच में पोला पन है (स्वः) जितने आकाश के बीच में लोक हैं उनको (अकल्पयत्) ईश्वर ने रचा है जैसे अनादि काल से लोक लोकान्तर को जगदीश्वर बनाया करता है वैसे ही अब भी बनाये हैं। और आगे भी बनावेगा क्योंकि ईश्वर का ज्ञान विपरीत कभी नहीं होता किन्तु पूरण और अनन्त होने से सर्वदा एक रस ही रहता है। उस में वृद्धि क्षय और उलटापन कभी नहीं होता इसी कारण से (यथा पूर्वमकल्पयत्) इस पद का ग्रहण किया है (विश्वस्य मिषतः) उसी ईश्वर ने सहज स्वभाव से जगत् के रात्रि दिवस घटिका पल और तृण आदि को जैसे पूर्व थे वैसे ही (व्यदधत्) रचे हैं इस में कोई ऐसी शंका करे कि ईश्वर ने किस वस्तु से जगत् को रचा है उसका उत्तर यह है कि (अमोद्भूत्तपसः) ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। जोकि ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण प्रकाशित और सब जगत् के बनाने की सामर्थ्य ईश्वर के अधीन

है (ऋतं०) उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्या का खजाना वेद शास्त्र को प्रकाशित किया जैसा कि पूर्व सृष्टि में प्रकाशित था और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा (सत्य) जो त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व रजो और तमो गुण से युक्त है जिसके नाम अव्यक्त अव्याकृत सत् प्रधान प्रकृति हैं जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है सो भी (अध्यजायत) अर्थात् कार्य्यरूप होके पूर्व कल्प के समान उत्पन्न हुआ है (ततोरात्र्य जायत) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है सोभी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है इसमें ऋग्वेद का प्रमाण है। कि जब जब विद्यमान सृष्टि होती है उसके पूर्व सब आकाश अंधकार रूप रहता है। और उसी अंधकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं। उसी का नाम महारात्रि है (ततः समुद्रो ऽर्णवः) तदनंतर उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघमण्डल में जो महा समुद्र है सो भी पूर्व सृष्टि के सदृश ही उत्पन्न हुआ है (समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत) उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात् क्षण मुहूर्त्त प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है वेद से लेके पृथिवी पर्य्यन्त जो यह जगत् है सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है और ईश्वर सब को उत्पन्न करके सब में व्यापक होके अन्तर्यामि रूप से सब के पाप पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात छोड़ के सत्य न्याय से सब को यथावत् फल देरहा है ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित

है कि मन कर्म और वचन से पापकर्मों को कभी न करें। इसी का नाम अघमर्षण है अर्थात् ईश्वर सब के अन्तःकरण के कर्मों को देख रहा है इससे पापकर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ देवें ॥

शन्नोदेवीरिति पुनराचामेत्। ततो गायत्र्यादि मन्त्रार्थान् मनसाविचारयेत्। पुनः परमेश्वरेणैव सूर्य्यादिकं सकलं जगद्रचितमिति परमार्थस्वरूपं ब्रह्म चिन्तयित्वा परंब्रह्म प्रार्थयेत् ॥

॥ अथ मनसापरिक्रमामन्त्राः ॥

प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥ दक्षिणादिगिन्द्रो ऽधिपतिस्तिरश्चिराजीरक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥ प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥ उदीचीदिक् सोमो-

धिपतिः स्वजोरक्षिताशनिरिषवः । तेभ्यो नमो ऽधिपति-
भ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ४ ॥ ध्रुवा-
दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम
एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः
॥ ५ ॥ ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्ष-
मिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम
इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो
जम्भे दध्मः ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ३ अ० ६ ॥ व० २७ ।
मं० १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ ।

॥ भाष्यम् ॥

(प्राचीदि०) सर्वासु दिक्षु व्यापकमीश्वरं संध्यायामग्न्यादि-
भिर्नामभिः प्रार्थयेत् । यत्र स्वस्य मुखं सा प्राचीदिक् ।
तथा यस्यां सूर्य्य उदेति सापि प्राचीदिगस्ति । तस्या अधि-
पतिरग्निरर्थात् ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः (असितः) बंधन-
रहितोऽस्माकं सदा रक्षिता भवतु । यस्यादित्याः प्राणाः
किरणाश्चेषवस्तैः सर्वं जगद्रक्षति तेभ्य इन्द्रियाधिपतिभ्यश्च-

रीररक्षितृभ्यइषुरूपेभ्यः प्राणेभ्योवारंवारं नमोऽस्तु कस्मै प्रयोजनाय यः कश्चिदस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तंवः तेषां प्राणानां जम्भे । अर्थाद्वशे दध्मः । यतस्सोनर्थान्निवर्त्य स्वमित्रो भवेत् वयं च तस्य मित्राणि भवेम ॥ १ ॥ (दक्षिणा०) दक्षिणस्यादिशइन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तः परमेश्वरोधिपतिरस्ति स एव कृपयास्मान् रक्षिता भवतु । अग्ने पूर्वदन्वयः कर्त्तव्यः ॥ २ ॥ तथा (प्रतीचीदिग्०) अस्यावरुणः सर्वोत्तमोधिपतिः परमेश्वरोस्माकं रक्षिता भवेदिति पूर्ववत् ॥ ३ ॥ (उदीची०) सोमः सर्वजगदुत्पादको ऽधिपतिरीश्वरोऽस्माकं रक्षितास्यादिति ॥ ४ ॥ (ध्रुवादिक्) अर्थादधोदिक् अस्या विष्णुर्व्यापकईश्वरोधिपतिः सोस्यामस्मान् रक्षेत्० अन्यत्पूर्ववत् ॥ ५ ॥ (ऊर्ध्वादिक्०) अस्याबृहस्पतिरर्थाद्बृहत्याबाचोबृहतोवेदशास्त्रस्य बृहतामकाशादीनां च पतिर्बृहस्पतिर्यः सर्वजगतो ऽधिपतिः स सर्वतो ऽस्मान् रक्षेत् । अग्ने पूर्ववद्योजनीयम् ॥ सर्वे मनुष्या सर्वशक्तिमन्तं सर्वगुरुं न्यायकारिणं दयालुं पितृवत्पालकं सर्वासु दिक्षु सर्वत्र रक्षकं परमेश्वरमेव मन्येरन्नित्यभिप्रायः ॥

॥ भाषार्थ ॥

(शन्नोदेवीरिति) इस मंत्र से तीन आचमन करे । तदनन्तर गायत्र्यादि मंत्रों के अर्थ विचार पूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान करे पश्चात् प्रार्थना करे अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहें और सदा

पश्चात्ताप करें कि मनुष्य शरीरधारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं बनता। जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके सब जगत् का उपकार किया है वैसे हम लोग भी सब का उपकार करें इस काम में परमेश्वर हम को सहाय करे कि जिस से हम लोग सब को सदा सुख देते रहें तदनन्तर ईश्वर की उपासना करे सो दो प्रकार की है एक सगुण और दूसरी निर्गुण जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी चेतन व्यापक अन्तर्यामी सब का उत्पादक धारण करनेहारा मंगलमय शुद्ध सनातन ज्ञान और आनन्द स्वरूप है धर्म अर्थ काम और मोक्ष पदार्थों का देनेवाला सब का पिता माता बंधु मित्र राजा और न्यायाधीश है इत्यादि ईश्वर के गुण विचार पूर्वक उपासना करने का नाम सगुणोपासना है। तथा निर्गुणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिये कि ईश्वर अनादि अनन्त है जिस का आदि और अंत नहीं अजन्मा अमृत्यु जिस का जन्म और मरण नहीं निराकार, निर्विकार, जिस का आकार और जिस में कोई विकार नहीं जिस में रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, अन्याय, अधर्म, रोग, दोष, अज्ञान, और मलीनता नहीं है जिस का परिमाण, छेदन, बंधन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण, और कम्पन नहीं होता जो ह्रस्व, दीर्घ, और शोकातुर, कभी नहीं होता जिसको भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष, और शोक कभी नहीं होते। जो उलटा काम कभी नहीं करता इत्यादि जो जगत् के गुणों से ईश्वर को अलग जान के ध्यान करना वह निर्गुणोपासना कहाती है। इस प्रकार प्राणायाम करके अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका के द्वारा बाहर फेंक के यथा शक्ति

बाहर ही रोक के पुनः धीरे धीरे भीतर लेके पुनः बल से बाहर फेंकके रोकने से मन और आत्मा को स्थिर करके आत्मा के बीच में जो अन्तर्यामी रूप से ज्ञान और आनन्द स्वरूप व्यापक परमेश्वर है उसमें अपने आप को मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये जैसा गोताँखोर जल में डुबकी मारके शुद्ध होके बाहर आता है वैसे ही सब जीव लोग अपने आत्माओं को शुद्ध ज्ञान आनन्द स्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें ॥

(प्राचीदिगग्निरधिपतिः) जो प्राची दिक् अर्थात् जिस ओर अपना मुख हो उस ओर अग्नि जो ज्ञानस्वरूप अधिपति जो सब जगत् का स्वामी (असितः) बंधन रहित (रक्षिता) सब प्रकार से रक्षा करनेवाला (आदित्या इषवः) जिसके बाण आदित्य की किरण हैं। उन सब गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग बारबार नमस्कार करते हैं (रक्षितृभ्यो नम, इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु) जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करनेवाले हैं और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देनेवाले हैं इनको हमारा नमस्कार हो इसलिये कि जो प्राणि अज्ञान से हमारा द्वेष करता है और जिस अज्ञान से धार्मिक पुरुष का तथा पापी पुरुष का हम लोग द्वेष करते हैं। उन सब की बुराई को उन बाण रूप किरण मुख रूप के बीच में दग्ध कर देते हैं कि जिससे किसी से हम लोग बैर न करें और कोई भी प्राणी हमसे बैर न करे किन्तु हम सब लोग परस्पर मित्रभाव से वर्त्तें ॥ १ ॥ (दक्षिणादिगिन्द्रोधिपतिः) जो हमारे दाहनी ओर दक्षिण दिशा है

उसका अधिपति इन्द्र अर्थात् जो पूर्ण ऐश्वर्य वाला है। (तिरश्चि-राजीरक्षिता) जो पदार्थ कीट पतंग वृश्चिक आदि तिर्य्यक् कहाते हैं उनकी राजी जो पंक्ति हैं उनसे रक्षा करने वाला एक परमेश्वर है। (पितर इषवः) जिस की सृष्टि में ज्ञानी लोग बाण के समान हैं (तेभ्यो नमो०) आगे का अर्थ पूर्व के समान जान लेना ॥ २ ॥ (प्रतीचीदिग् वरुणोधिपतिः) जो पश्चिम दिशा अर्थात् अपने पृष्ठ भाग में है उसमें वरुण जो सब से उत्तम सब का राजा परमेश्वर है (पृदाकूरक्षितान्नमिषवः) जो बड़े बड़े अजगर सर्पादि विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाला है जिसके अन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ बाणों के समान हैं श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों को ताड़ना के निमित्त हैं (तेभ्यो नमो०) इसका अर्थ पूर्व मंत्र के समान जान लेना ॥ ३ ॥ (उदीचीदिक् सोमोधिपतिः) जो अपनी बांई और उत्तर दिशा है उसमें सोम नाम से अर्थात् शांत्यादि गुणों से आनन्द करने वाले जगदीश्वर का ध्यान करना चाहिये (स्वजोरक्षिता शनिरिषवः) जो अच्छी प्रकार अजन्मा और रक्षा करनेवाला है जिसके बाण विद्युत् है (तेभ्यो नमो०) आगे पूर्ववत् जानलेना ॥ ४ ॥ (ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः) ध्रुवदिशा अर्थात् जो अपने नीचे की ओर है उसमें विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से परमात्मा का ध्यान करना (कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः) जिसके हरित रंग वाले वृक्षादि ग्रीवा के समान है जिसके बाण के समान सब वृक्ष हैं उनसे अधो दिशा में हमारी रक्षा करे (तेभ्यो नमो०) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥ ५ ॥ (ऊर्ध्वादिग्बृहस्पतिरधिपतिः) जो अपने ऊपर दिशा है उसमें बृहस्पति जो कि वाणी का स्वामी परमेश्वर

है उसको अपना रक्षक जानें जिस के बाण के समान वर्षा के बिंदु हैं उन से हमारी रक्षा करे (तेभ्यो०) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥ ६ ॥ इति मनसापरिक्रमामंत्राः ॥

॥ अथोपस्थानमंत्राः ॥

ओं उद्वयन्तमंसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रासूर्य्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥ १ ॥ य० । अ० ३५ । मं० १४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

हेपरमात्मन् (सूर्य्ये) चराचरात्मानं त्वां (पश्यन्तः) प्रेक्षमाणास्सन्तो वयम् (उदगन्म) अर्थात् उत्कृष्टश्रद्धावन्तो भूत्वा वयं भवन्तं प्राप्नुयाम कथंभूतं त्वां (ज्योतिः) स्वप्रकाशं (उत्तमम्) सर्वोत्कृष्टम् (देवत्रा) सर्वेषु दिव्यगुणवत्सु पदार्थेषु ह्यनन्त दिव्यगुणैर्युक्तं (देवं) धर्मात्मनां मुमुक्षूणां मुक्तानां च सर्वानन्दस्यदातारं मोदयितारं च (उत्तरं) जगत्प्रलयानन्तरं नित्यस्वरूपत्वाद्विराजमानम् (स्वः) सर्वानन्दस्वरूपं (तमसस्परि) अज्ञानान्धकारात्पृथग्भूतं भवन्तं प्राप्तुं वयं नित्यं प्रार्थयामहे। भवान् स्वकृपया सद्यः प्रापयतु न इति ॥ १ ॥

उदुत्यं जातवेदसं देवंवहन्ति केतवः। दृशेविश्वाय सूर्य्यम् ॥ २ ॥ यजुः० अ० ३३ मं० ३१ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(केतवः) किरणा विविधजगतः पृथक् पृथग्रचनादिनियामका ज्ञापकाः प्रकाशका ईश्वरस्य गुणाः (दृशेविश्वाय) विश्वंद्रष्टुं (त्यं) तं पूर्वोक्तं (देवं) (सूर्य्यं) चराचरात्मानं परमेश्वरं (उद्वहन्ति) उत्कृष्टतया प्रापयन्ति ज्ञापयन्ति प्रकाशयन्ति वै। (उ) इति वितर्केनैव पृथक् पृथग् विविधनियमान् दृष्ट्वा नास्तिका अपीश्वरं त्यक्तुं समर्था भवन्तीत्यभिप्रायः। कथंभूतं देवं (जातवेदसं) जाता ऋग्वेदादयश्चत्वारोवेदाः सर्वज्ञानप्रदाः यस्मात्तथा जातानि प्रकृत्यादीनि भूतान्यसंख्यातानि विन्दति। यद्वा जातं सकलं जगद्वेत्ति जानाति यः स जातवेदास्तं जातवेदसं सर्वे मनुष्यास्तमेवैकं प्राप्तुमुपासितुमिच्छन्त्वित्यभिप्रायः ॥ २ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ॥ आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥ य० अ० ७ मं० ४२।

॥ भाष्यम् ॥

(चित्रं०) सएव देवः (सूर्य्यः) (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्यच आत्मा) अततिनैरंतर्य्येण सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा तथा (आप्रा०) द्यौः पृथिवी अन्तरिक्षं चैतदादिसर्वं जगद्रचयित्वा आसमन्ताद्धारयन्सन् रक्षति। (चक्षुः) एष एवै-

तेषां प्रकाशकत्वाद्बाह्याभ्यन्तरयोश्चक्षुः प्रकाशको विज्ञानमयो विज्ञापकश्चास्ति । अतएव (मित्रस्य) सर्वेषु द्रोहरहितस्य मनुष्यस्य सूर्य्यलोकस्य प्राणस्य वा (वरुणस्य) वरेषु श्रेष्ठेषु कर्मसु गुणेषु वर्त्तमानस्य च (अग्नेः) शिल्पविद्याहेतो रूपगुणदाहप्रकाशकस्य विद्युतोभ्राजमानस्यापि चक्षुः सर्वसत्योपदेष्टा प्रकाशकश्च (देवानाम्) स दिव्यगुणवतां विदुषामेव हृदये (उदगात्) उत्कृष्टतया प्राप्तोस्ति प्रकाशको वा तदेव ब्रह्म (चित्रं) अद्भुतस्वरूपम् ॥ अत्र प्रमाणम् ॥ आश्चर्य्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्य्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥ कठोपनि० वल्ली २ । आश्चर्य्यस्वरूपत्वाद्ब्रह्मणस्तदेव ब्रह्म सर्वेषां चास्माकं (अनीकं) सर्वदुःखनाशार्थं कामक्रोधादिशत्रुविनाशार्थं बलमस्ति तद्विहाय मनुष्याणां सर्वसुखकरं शरणमन्यन्नास्त्येवेति वेद्यम् । (स्वाहा) अथाच स्वाहाशब्दार्थं प्रमाणं निरुक्तकारा आहुः । स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेतिवा स्वावागाहेतिवा स्वंप्राहेतिवा स्वाहुतं हविर्जुहोतीतिवा तासामेषा भवति । निरु० अ० ८ खं० २० । स्वाहाशब्दस्यायमर्थः (सुआहेतिवा) (सु) सुष्ठु कोमलं मधुरं कल्याणकरं प्रियंवचनं सर्वैर्मनुष्यैः सदा वक्तव्यम् (स्वावागाहेतिवा) या स्वकीया वाग् ज्ञानमध्ये वर्त्तते सा यदाह तदेव वागिन्द्रयेण सर्वदा वाच्यम् (स्वं प्राहेतिवा) स्वं स्वकीयपदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यम् । न परपदार्थं प्रतिचेति

(स्वाहुतं ह०) सुष्ठुरीत्या संस्कृत्य संस्कृत्य हविः सदा होतव्यमिति स्वाहाशब्दपर्य्यायार्थाः। स्वमेव पदार्थं प्रत्याहवयं सर्वदा सत्यं वदाम इति न कदाचित्परपदार्थप्रति मिथ्या वदेमेति ३ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ पश्येमशरदः शतंजीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवामशरदः शतमदीनाःस्यामशरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥ य० अ० ३६ मं० २४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(तच्चक्षुः) यत्सर्वदृक् (देवहितं) देवेभ्यो हितं दिव्यगुणवतां धर्मात्मनां विदुषां स्वसेवकानां च हितकारि वर्त्तते यत् (पुरस्तात्) पूर्वसृष्टेः प्राक् (शुक्रं) सर्वजगत्कर्तृशुद्धमासीदिदानीमपि तादृशमेव चास्ति। तदेव (उच्चरत्) अर्थात् उत्कृष्टतया सर्वत्र व्याप्तं विज्ञानस्वरूपं (उद्) प्रलयादूर्द्धं सर्वसामर्थ्यं स्यास्यति (तत्) ब्रह्म (पश्येम शरदः शतं) वयं शतंवर्षाणि तस्यैव प्रेक्षणं कुर्महे। तत्कृपया (जीवेम शरदः शतं) शतंवर्षाणि प्राणान् धारयेमहि (शृणुयाम शरदः शतं) तस्य गुणेषु श्रद्धाविश्वासवन्तो वयम् तमेव शृणुयाम तथाच तद् ब्रह्म तद्गुणांश्च (प्रब्रवामश०) अन्येभ्यो मनुष्येभ्यो नित्यमुपदिशेम (अदीनाः स्यामश०) एवं च तदुपासनेन तद्विश्वासेन

तत्कृपया च शतवर्षपर्य्यन्तमदीनाः स्याम भवेम मा कदाचित्कस्यापि समीपे दीनता कर्त्तव्या भवेन्नादारिद्र्यं च सर्वदा सर्वथा ब्रह्मकृपया स्वतंत्रावयं भवेम तथा (भूयश्च श०) वयं तस्यैवानुग्रहेण भूयः शताच्छरदः शताद्वर्षेभ्योऽप्यधिकं पश्येम जीवेम शृणुयाम, प्रब्रवाम, अदीनाः स्याम, चेत्यन्वयः। अर्थान्नैव मनुष्यास्तमतिकृपालुं परमेश्वरं त्यक्त्वान्यमुपासीरन् याचेरन्नित्यभिप्रायः॥ योन्यां देवतामुपास्ते पशुरेवꣳसदेवानाम्। श० कां० १४ अ० ४॥ सर्वे मनुष्याः परमेश्वरमेवोपासीरन् यस्तस्मादन्यस्योपासनं करोति स इन्द्रियारामोगर्द्दभवत्सर्वैश्शिष्टैर्विज्ञेयइति निश्चयः॥ ४॥ कृतांजलिरत्यन्तश्रद्धालुर्भूत्वै तैर्मन्त्रैः स्तुवन् सर्वकालसिद्धयै परमेश्वरं प्रार्थयेत्॥ ४॥

गुरु विरजानन्द
सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 356
दयानन्द ... महाविद्यालय

॥ भावार्थ ॥

अब उपस्थान के मन्त्रों का अर्थ करते हैं जिनसे परमेश्वर की स्तुति और प्रार्थना की जाती है हे परमेश्वर (तमसस्परिस्वः) सब अंधकार से अलग प्रकाश स्वरूप (उत्तरं) प्रलय के पीछे सदा वर्त्तमान (देवं देवत्रा) देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करनेवालों में प्रकाशक (सूर्यं) चराचर के आत्मा (ज्योतिरुत्तमं) जो ज्ञान स्वरूप और सबसे उत्तम आप को जान के (वयमुद्गन्म) हमलोग सत्य से प्राप्त हुए हैं हमारी रक्षा करनी आप के हाथ है क्योंकि हमलोग आप के शरण हैं॥ १॥ (उदुत्यं जातवेदसं०) जिससे

ऋग्वेदादि चार वेद प्रसिद्ध हुए हैं और जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त होरहा है। जो सब जगत् का उत्पादक है सो परमेश्वर जातवेदा नाम से प्रसिद्ध है (देवं) जो सब देवों का देव और (सूर्य्यं) सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है (त्यं) उस परमात्मा को (दृशे विश्वाय०) विश्व विद्या की प्राप्ति के लिये हम लोग उपासना करते हैं (उद्वहन्ति केतवः) जिस को केतवः अर्थात् वेद की श्रुति और जगत् के पृथक् पृथक् रचनादि नियामक गुण उसी परमेश्वर को जनाते और प्राप्त करते हैं उस विश्व के आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर ही की हम उपासना सदा करें अन्य किसी की नहीं ॥ २ ॥ (चित्रं देवाना०) (सूर्य आत्मा०) प्राणी और जड़ जगत् का जो आत्मा है उसको सूर्य्य कहते हैं (आप्राद्या०) जो सूर्य्य और अन्य सब लोकों को बना के धारण और रक्षण करनेवाला है (चक्षुर्मित्रस्य०) जो मित्र अर्थात् रागद्वेष रहित मनुष्य तथा सूर्य्यलोक और प्राण का चक्षु प्रकाश करने वाला है (वरुणस्या०) सब उत्तम कर्मों में जो वर्त्तमान मनुष्य प्राण अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाला है। २। (चित्रं देवाना) जो अद्भुत स्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है (अनीकं) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये परम उत्तम बल है वह परमेश्वर (उदगात्) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे ॥ ३ ॥ (तच्चक्षुर्देवहितं०) जो ब्रह्म सबका द्रष्टा धार्म्मिकविद्वानों का परम हितकारक, तथा (पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्) सृष्टि के पूर्व, पश्चात्, और मध्य में सत्य स्वरूप से वर्त्तमान रहता और सब जगत् का करने वाला है (पश्येम शरदः शतम्) उसी

ब्रह्म को हम लोग सौ वर्ष पर्य्यन्त देखें (जीवेम शरदः शतं०) जीवें (शृणुयाम शरदः शतं) सुनें (प्रब्रवामश०) उसी ब्रह्म का उपदेश करें (अदीनाःस्याम०) और उसकी कृपा से किसी के आधीन न रहें (भूयश्च शरदः शतात्) उसी परमेश्वर की आज्ञा पालन और कृपा से सौ वर्षों से उपरान्त भी हमलोग देखें जीवें सुनें सुनावें और स्वतंत्र रहें अर्थात् आरोग्यशरीर, दृढ इन्द्रिय, शुद्धमन और आनन्द सहित हमारा आत्मा सदा रहे। यही एक परमेश्वर सब मनुष्यों का उपास्य देव है जो मनुष्य इसको छोड़ के दूसरे की उपासना करता है वह पशु के समान होके सब दिन दुःख भोगता रहता है इसलिये प्रेम में अत्यन्त मग्न होके अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के इन मंत्रों से स्तुति और प्रार्थना सदा करते रहें ॥ ४ ॥

॥ अथ गुरुमंत्रः ॥

ओम्। यजु० अ० ४० मं० १७ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि ॥ धियोयोनः प्रचोदयात्॥ य० अ० ३६ मं० ३ ऋ० मंड० ३ सू० ६२ मं० १०। एवं चतुर्षु वेदेषु समानोमन्त्रः ॥ १ ॥

॥ भाष्यम् ॥

अस्य सर्वोत्कृष्टस्य गायत्रीमंत्रस्य संक्षेपेणार्थ उच्यते ॥ अ उ म् एतत्त्रयं मिलित्वा ओम् इत्यक्षरं भवति ॥ यथाह

मनुः । अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः वेदत्रया-न्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च ॥ म० अ० २ एतच्च सर्वोत्तमं प्रसिद्धतमं परब्रह्मणो नामास्ति । एतेनैकेनैव नाम्ना परमेश्वरस्यानेकानि नामान्यागच्छन्तीति वेद्यम् । तद्यथा । अकारेण विराडग्निर्विश्वादीनि । (विराट्) विविधं चराचरं जगद्राजयते प्रकाशयते स विराट् सर्वात्मेश्वरः । (अग्निः) अच्यते प्राप्यते सत्क्रियतेवा वेदादिभिः शास्त्रैर्विद्वद्भिश्चेत्यग्निः परमेश्वरः । (विश्वः) विष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन्स विश्वः । यद्वा विष्टोऽस्ति प्रकृत्यादिषु यः स विश्वः एतदाद्यर्था अकारेण विज्ञेयाः । उकारेण हिरण्यगर्भवायुतैजसादीनि । तद्यथा । (हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि सूर्य्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य तथा सूर्य्यादीनां तेजसां यो गर्भाधिष्ठानं स हिरण्यगर्भः अत्र प्रमाणम् । ज्योतिर्वैहिरण्यं ज्योतिरेषोऽमृतꣳहिरण्यम् । श० कां० ६ अ० ७ । यशोवै हिरण्यम् । ऐ० पं० ७ अ० ३ । (वायुः) यो वाति जानाति धारयत्यनन्तबलत्वात्सर्वं जगत्स वायुः सचेश्वर एव भवितुमर्हति नान्यः । (तद्वायुरिति) मंत्रवर्णार्थाद्ब्रह्मणो वायुः संज्ञास्ति (तैजसः) सूर्य्यादीनां प्रकाशकत्वात्स्वयं प्रकाशत्वात्तैजसईश्वरः । एतदाद्यर्था उकाराद्विज्ञातव्याः । मकारेणेश्वरादित्यप्राज्ञादीनि नामानि बोध्यानि । तद्यथा । (ईश्वरः) ईष्टेऽसौ सर्वशक्तिमान्न्यायकारीश्वरः ।

(आदित्यः) अविनाशित्वादादित्यः परमात्मा ॥ (प्राज्ञः) प्रजानाति सकलं जगदिति प्रज्ञः प्रज्ञएव प्राज्ञश्च परमात्मैवेति । एतदाद्यर्थामकारेण निश्चेतव्याध्येयाश्चेति ॥

॥ अथ महाहृत्यर्थाः संक्षेपतः ॥

भूरितिवै प्राणः । भुवरित्यपानः । स्वरितिव्यानः । इतितैत्तिरीयोपनिषद्वचनम् । प्रपा० ७ अनु० ६ । (भूः) प्राणयति जीवयति सर्वान् प्राणिनः सप्राणः प्राणादपि प्रियस्वरूपो वा स चेश्वरएवायमर्थो भूशब्दस्य ज्ञेयः (भुवः) यो मुमुक्षूणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्मात्मनां सर्वं दुःखमपानयति दूरीकरोति सो ऽपानो दयालुरीश्वरो स्त्ययंभुवः शब्दार्थोऽस्तीति बोध्यम् । (स्वः) यदभिव्याप्य व्यानयति चेष्टयति प्राणादिसकलं जगत्स व्यानः सर्वाधिष्ठानं बृहद् ब्रह्मेतिखल्वयं स्वःशब्दार्थोस्तीति मन्तव्यम् । एतदाद्यर्थमहाव्याहृतीनां ज्ञातव्याः ॥ (सविता) सुनोति सूयते सुवति वोत्पादयति सृजति सकलं जगत्स सर्वेषिता सर्वेश्वरः सविता परमात्मा सवितुः प्रसवे । इति मन्त्रपदार्थादुत्पत्तेः कर्त्ता योऽर्थोस्ति स सवितेत्युच्यत इति मन्तव्यम् ॥ (वरेण्यं) यद्वरं वर्तुमर्हमतिश्रेष्ठं तद्वरेण्यम् (भर्गः) यन्निरुपद्रवं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरहितं पक्वं) परमार्थविज्ञानस्वरूपं तद्भर्गः । (देवस्य) दीव्यति यः प्रकाशयति खल्वानन्दयति सर्वं विश्वं स देवः । तस्य

(देवस्य) (धीमहि) तमेव परमात्मानं वयं नित्यमुपासीमहि ॥ कस्मै प्रयोजनाय तस्य धारणेन विज्ञानादिबलेनैव वयं पुष्टा दृढाः सुखिनश्च भवेमेत्यस्मै प्रयोजनाय तथाच (धियो) धारणावत्योबुद्धयः (यः) परमेश्वरः (नः) अस्माकं (प्रचोदयात्) प्रेरयेत् । हेसच्चिदानन्दानन्तस्वरूप हेनित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वाभाव हेअज हेनिराकार सर्वशक्तिमन् न्यायकारिन् हे-करुणामृतवारिधे (सवितुर्देवस्य) तव यद्वरेण्यं भर्गस्तद्वयं धीमहि कस्मै प्रयोजनाय (यः) सविता देवः परमेश्वरः स-नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात् । योहि सम्यग्ध्यातः प्रार्थितः सर्वश्रदेवः परमेश्वरः स्वकृपाकटाक्षेण स्वशक्त्या च ब्रह्मचर्यविद्याविज्ञानसद्धर्मजितेन्द्रियत्वपरब्रह्मानन्दप्राप्तिमतीरस्माकं धियः कुर्यादस्मै प्रयोजनाय । तत्परमात्मस्वरूपं वयं धीमहीति सं-क्षेपतो गायत्र्यर्थो विज्ञेयः । एवं प्रातः सायं द्वयोः सन्ध्ययोरेका-न्तदेशं गत्वा शान्तोभूत्वा यतात्मासन् परमेश्वरं प्रतिदिनं ध्यायेत् ॥

॥ भाषार्थ ॥

॥ अथ गुरुमंत्रः ॥

(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार उकार और मकार के योग से (ओम्) यह अक्षर सिद्ध है सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिस में सब नामों के अर्थ आजाते हैं जैसा पिता पुत्र का प्रेम संबंध है वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का

संबंध है इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है जैसे अकार से (विराट्) जो विधि जगत् का प्रकाश करनेवाला है। (अग्निः) जो ज्ञान स्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है। (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है और जो सर्वत्र प्रविष्ट है। इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिये। उकार से (हिरण्यगर्भः) जिस के गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्य्यादि लोक हैं और जो प्रकाश करनेहारे सूर्य्यादि लोकों का उत्पन्न करनेवाला है। इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं ज्योति के नाम हिरण्य अमृत और कीर्त्ति हैं। (वायुः) जो अनन्त बलवाला और सब जगत् का धारण करनेहारा है (तैजसः) जो प्रकाश स्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार मात्रा से जानना चाहिये। तथा मकार से (ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है (आदित्यः) जो नाशरहित है (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया। अब संक्षेप से महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं (भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है। इससे परमेश्वर का नाम (भूः) है (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इस लिये परमेश्वर का नाम (भुवः) है (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता और सब का ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इससे परमेश्वर का

नाम (स्वः) है यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिखिदिया ॥ अब गयत्री मंत्र का अर्थ लिखते हैं (सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य्य का देने वाला है (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करने वाला और सब सुखों का दाता है (वरेण्यं) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) हम लोक सदा प्रेम भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें किस प्रयोजन के लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे इस लिये सब लोगों को चाहिये कि जो सत् चित् आनन्दस्वरूप नित्यज्ञानी नित्यमुक्त अजन्मा निराकार सर्वशक्तिमान् न्यायकारी व्यापक कृपालु सब जगत् का जनक और धारण करने हारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म अर्थ काम और मोक्ष जो मनुष्य देह रूप वृक्ष के चार फल हैं वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हों। यह गायत्री मंत्र का अर्थ संक्षेप से हो चुका ॥

॥ अथ समर्पणम् ॥

हेईश्वर दयानिधे भवत्कृपयानेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः । तत ईश्वरं नमस्कुर्य्यात् ॥

नमः सम्भवायच मयोभवायच नमः शंकरायच मय-

स्करायंच नमः शिवायंच शिवतरायच ॥ १ ॥ य० अ० १६ मं० ४१ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(नमः शम्भवायच) यः सुखस्वरूपः परमेश्वरोस्ति तं वयं नमस्कुर्म्महे ॥ (मयोभवायच) यः संसारे सर्वोत्तमसौख्यप्रदातास्ति तं वयं नमस्कुर्महे ॥ (नमः शंकरायच) यः कल्याणकारकः सन् धर्मयुक्तानि कार्य्याण्येव करोति तं वयं नमस्कुर्महे ॥ (मयस्करायच) यः स्वभक्तान् सुखकारकत्वाद्धर्मकार्य्येषु युनक्तितं वयं नमस्कुर्महे ॥ (नमः शिवायच शिवतरायच) योऽत्यन्तमङ्गलस्वरूपः सन् धार्मिकमनुष्येभ्यो मोक्षसुखप्रदातास्ति तस्मै परमेश्वरायास्माकमनेकधा नमोस्तु ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस प्रकार से सब मन्त्रों के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके आगे समर्पण करे कि हे ईश्वर दयानिधे आप की कृपा से जो जो उत्तम काम हम लोग करते हैं वे सब आप के अर्पण हैं जिससे हम लोग आप को प्राप्त होके धर्म जो सत्य, न्याय का आचरण करना है। अर्थ जो धर्म से पदार्थों को प्राप्ति करना है काम जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है। और मोक्ष जो सब दुःखों से छूट कर सदा आनन्द में रहना है। इन चार पदार्थों की सिद्धि हम को शीघ्र प्राप्त हो। इति समर्पणम्। इसके पीछे ईश्वर को नमस्कार करे (नमः शंभवायच) जो सुखस्वरूप, (मयोभवायच०) संसार के उत्तम सुखों का

देने वाला, (नमः शंकरायच) कल्याण का कर्त्ता, मोक्ष स्वरूप, धर्म्म युक्त कामों को ही करने वाला, (मयस्कारायच) अपने भक्तों को सुख का देने वाला, और धर्म कामों में युक्त करने वाला, (नमः शिवायच शिवतरायच) अत्यन्त मङ्गल स्वरूप, और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देने हारा, है उसको हमारा वारंवार नमस्कार हो ॥ इति सन्ध्योपासनविधिः ॥

॥ अथाग्निहोत्रसन्ध्योपासनयोः प्रमाणानि ॥

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता । वसोर्वसोर्वसुदानएधि वयंत्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ १ ॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता । वसोर्वसोर्वसुदानएधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥ अथर्व० कां० १९ अनु० ७ मं० ३ । ४ तस्माद्ब्राह्मणोहोरात्रस्य संयोगे संध्यामुपास्ते । सज्योतिष्याज्योतिषो दर्शनात्सोऽस्याः कालः सा संध्या तत् संध्यायाः संध्यात्वम् । षड्विंश ब्रा० प्रपा० ४ खं० ५ । उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥ तैत्तिरीय आ० २ प्रपा० २ अनु० २ । न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः । म० अ० २ श्लो० १०३ । (सायं सायं०) अयं नोस्माकं गृहपतिर्गृहात्मपालको भौतिकः परमेश्वरश्च (प्रातः प्रातः) तथा (सायं सायं) च परिचरितस्सूपासितःसन् (सौ मनस्य

दाता) आरोग्यस्यानन्दस्यच दाता भवति तथा (वसोर्वे०) उत्तमोत्तमपदार्थस्यच । अत एव परमेश्वरः । (वसुदानः) वसुप्रदातास्ति । हे परमेश्वर एवंभूतस्त्वमस्माकं राज्यादिव्यवहारे हृदयेच (एधि) प्राप्तो भव तथा भौतिकोप्यग्निरत्र ग्राह्यः (वयं त्वे०) हेपरमेश्वर एवं त्वा त्वामिन्धानाः प्रकाशयितारस्सन्तो वयं (तन्वं) शरीरं (पुषेम) पुष्टं कुर्य्यामहि । तथाग्निहोत्रादिकर्मणा भौतिकमग्निमिन्धानाः प्रदीपयितारःसन्तः सर्वे वयं पुष्येम ॥ ३ ॥ (प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो) अस्यार्थः पूर्ववद्विज्ञेयः परंत्वयं विशेषः ॥ वयमग्निहोत्रमीश्वरोपासनं च कुर्वन्तःसन्तः (शतहिमाः) शतं हिमाहेमन्तर्त्तवो गच्छन्ति येषु संवत्सरेषु ते शतहिमायावत्स्युस्तावत् (ऋधेम) वर्द्धेमहि । एवं कृतेन कर्म्मणा नोस्माकं नैव कदाचिद्धानिर्भवेदितीच्छामः ॥ ४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(सायं सायं) यह हमारा गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक भौतिक अग्नि और परमेश्वर प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल श्रेष्ठ उपासना को प्राप्त होके (सौमनस्य दाता) जैसे आरोग्य और आनन्द का देने वाला है उसी प्रकार उत्तम से उत्तम वस्तु का देने वाला है इसी से परमेश्वर (वसुदानः) वसु-अर्थात् धन का देनेवाला प्रसिद्ध है । हेपरमेश्वर इस प्रकार आप मेरे राज्य आदि व्यवहार और चित्त में प्रकाशित रहिये । तथा इस मंत्र में अग्निहोत्र आदि करने के लिये भौतिक अग्नि भी ग्रहण

करने योग्य है (वयं त्वे०) हे परमेश्वर पूर्वोक्त प्रकार से हम आप को प्रकाश करते हुए अपने शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें इसी प्रकार भौतिक अग्नि को प्रज्वलित करते हुए सब संसार की पुष्टि करके पुष्ट हों (प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो०) इस मंत्र का अर्थ पूर्व मंत्र के तुल्य जानो परन्तु यह विशेष है कि अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना करते हुए हम लोग (शतंहिमाः) सौ हेमन्त ऋतु बीत जायं जिन वर्षों में अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त (रुधेम) धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त होते रहें। और पूर्वोक्त प्रकार से अग्निहोत्रादि कर्म करके हमारी हानि कभी न हो ऐसी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ (तस्माद्ब्राह्मणो०) ब्रह्म का उपासक मनुष्य रात्रि और दिवस के संधिसमय में नित्य उपासना करे जो प्रकाश और अप्रकाश का संयोग है वही संध्या का काल जानना। और उस समय में जो संध्योपासन का ध्यान क्रिया करनी होती है वही संध्या है और जो एक ईश्वर को छोड़ के दूसरे की उपासना न करनी तथा संध्योपासन कभी न छोड़ देना इसी को संध्यापन कहते हैं ॥ ३ ॥ (उद्यन्तमस्तं यान्त०) जब सूर्य्य के उदय और अस्त का समय आवे उस में नित्य प्रकाशस्वरूप आदित्य परमेश्वर की उपासना करता हुआ ब्रह्मोपासक ही मनुष्य संपूर्ण सुख को प्राप्त होता है। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि दो समय में परमेश्वर की नित्य उपासना किया करें ॥ ४ ॥ इस में मनुस्मृति की भी साक्षी है कि दो घड़ी रात्रि से लेके सूर्य्योदय पर्य्यन्त प्रातःसंध्या और सूर्य्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्य्यन्त सायंकाल में सविता अर्थात् सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर की उपासना

गायत्र्यादि मंत्रों के अर्थ विचारपूर्वक नित्य करें ॥ ५ ॥ (न तिष्ठति तु०) जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायंसन्ध्योपासन को नहीं करता उस को शूद्र के समान समझ कर द्विज कुल से अलग करके शूद्र कुल में रख देना चाहिये। वह सेवा कर्म किया करे और उसको विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये इस से सब मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जान कर पूर्वोक्त दो समयों में जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें ॥ इत्यग्निहोत्रसन्ध्योपासनप्रमाणानि ॥ इति प्रथमो ब्रह्मयज्ञः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयोऽग्निहोत्रो देवयज्ञः प्रोच्यते ॥

उसका आचरण इस प्रकार से करना चाहिये कि सन्ध्योपासन करने के पश्चात् अग्निहोत्र का समय है। उसके लिये सोना चांदी तामा लोहा वा मिट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिये जिसका परिमाण सोलह अङ्गुल चौड़ा सोलह अङ्गुल गहरा और उसका तला चार अङ्गुल का लंबा चौड़ा रहे ॥ एक चमसा जिसकी डंडी सोलह अङ्गुल और उसके अग्रभाग में अंगोठा की यव रेखा के प्रमाण से लम्बा चौड़ा आचमनी के समान बनवा लेवे सो भी सोना चांदी वा पलाशादि लकड़ी का हो। एक आज्यस्थाली अर्थात् घृतादि सामग्री रखने का पात्र सोना चांदी वा पूर्वोक्त लकड़ी का बनवा लेवे ॥ एक जल का पात्र तथा एक चिमटा और पलाशादि की लकड़ी समिधा के लिये रख लेवे पुनः घृत को गर्म कर छान लेवे। और एक सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केशर पीस के मिलाकर उक्त पात्र के तुल्य दूसरे पात्र में

रख छोड़े । जब अग्निहोत्र करे तब शुद्ध स्थान में बैठ के पूर्वोक्त सामग्री पास रख लेवे । जल के पात्र में जल और घी के पात्र में एक कुटांक वा अधिक जितना सामर्थ्य हो उतने शोधे हुए घी को निकाल कर अग्नि में तपा के सामने रख लेवे । तथा चमसे को भी रख लेवे । पुनः उन्हीं पलाशादि वा चन्दनादि लकड़ियों को वेदी में रख कर उनमें आगी धर के पंखे से प्रदीप्त कर नीचे लिखे मंत्रों में से एक एक मंत्र से एक एक आहुती देता जाय प्रातःकाल वा सायंकाल में । अथवा एक समय में करे तो सब मंत्रों से सब आहुतीं किया करे ॥

॥ अथाग्निहोत्रहोमकरणार्थाः मंत्राः ॥

सूर्य्योज्योतिर्ज्योतिःसूर्य्यः स्वाहा ॥ सूर्य्योवर्चो-ज्योतिर्व्वर्चः स्वाहा ॥ ज्योतिःसूर्य्यः सूर्य्योज्योतिः स्वाहा ॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ॥ जुषाणः सूर्य्योव्वेतु स्वाहा ॥ एते चत्वारो मन्त्राः प्रातःकालस्य सन्तीति बोध्यम् । अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ अग्निर्व्वर्चोज्योतिर्व्वर्चः स्वाहा ॥ अग्निर्ज्योतिरितिमंत्रं मनसोच्चार्य्य तृतीयाहुतिर्देया ॥ ३ ॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूराचेन्द्रवत्या ॥ जुषाणोऽअग्निर्व्वेतु स्वाहा ॥ य० अ० ३ । मं० ९ । १० ॥ एते सायंकालस्य मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम् ॥

अथोभयोः कालयोरग्निहोत्रे होमकरणार्थास्समानामंत्राः ॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । ओम्भुवर्वायवे ऽपानाय स्वाहा । ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ आपोज्योती रसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरों स्वाहा ॥ ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥

॥ भाष्यम् ॥

(सूर्य्यो०) यश्चराचरात्मा ज्योतिषां प्रकाशकानामपि ज्योतिः प्रकाशकः सर्वप्राणः परमेश्वरोस्ति तस्मै स्वाहार्थात् तदाज्ञापालनार्थं सर्वजगदुपकारायैकाहुतिं दद्मः ॥ १ ॥ (सूर्य्योव०) यो वर्च्चः सर्वविद्यं ज्योतिषां ज्ञानवतां जीवानामपि वर्च्चोन्तर्यामितया सत्योपदेष्टा सर्वात्मा सूर्य्यः परमेश्वरोस्ति तस्मै० ॥ २ ॥ (ज्योतिः सूर्य्यः०) यः स्वयंप्रकाशः सर्वजगत्प्रकाशकः सूर्य्यो जगदीश्वरोस्ति तस्मै० ॥ ३ (सजू०) यो देवेन द्योतकेन सविचा सूर्य्यलोकेन जीवेन च सह तथा (इन्द्रवत्या) सूर्य्यप्रकाशवत्योषसाथवा जीववत्या मानसवृत्या (सजूः) सह वर्त्तमानः परमेश्वरोस्ति सः (जुषाणः) संप्रीत्या वर्त्तमानःसन् (सूर्य्यः) सर्वात्मा कृपाकटाक्षेणास्मान् वेतु विद्यादिसद्गुणेषु जातविज्ञानान् करोतु तस्मै० ॥ ४ ॥ इमाश्चतस्र

आहुतीः प्रातरग्निहोत्रे कुर्वन्तु । अथ सायंकालाहुतयः । (अग्नि०) योऽग्निर्ज्ञानस्वरूपो ज्ञानप्रदश्च ज्योतिषां ज्योतिः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ १ ॥ (अग्निर्व्वर्च्चो०) यः पूर्वैरुक्तोऽग्निरनन्तविद्य आत्मप्रकाशकः सर्वपदार्थप्रकाशकश्च सूर्य्यादिद्योतकोऽस्ति तस्मै० ॥ २ ॥ अग्निर्ज्योतिरित्यनेनैव तृतीयाहुतिर्देया तदर्थश्च पूर्ववत् ॥ ३ ॥ (सजूर्दे०) यः पूर्वोक्तेन देवेन सवित्रा सह परमेश्वरः सजूरस्ति । यश्चेन्द्रवत्या वायुचन्द्रवत्या रात्र्या सह सजूर्वर्त्तते सोऽग्निः (जुषाणः) संप्रीतोऽस्मान् वेतु नित्यानन्दमोक्षसुखायस्वकृपया कामयतु तस्मै जगदीश्वराय स्वाहेति पूर्ववत् ॥ ४ ॥ एताभिः सायं कालेऽग्निहोत्रेणोजुह्वति । एकस्मिन्काले सर्वाभिर्वा (सर्ववे०) हेजगदीश्वर यदिदमस्माभिः परोपकारार्थं कर्म क्रियते भवत्कृपया परोपकारायालं भवत्विति । एतदर्थमेतत्कर्म्म तुभ्यं समर्प्यते ॥ (ओं भूर०) एतानि सर्वाण्यीश्वरनामान्येव वेदानि । एतेषामर्थो गायत्र्यर्थे द्रष्टव्याः ॥ एवं प्रातः सायं सन्ध्योपासनकरणानन्तरमेतैर्मन्त्रैर्होमं कृत्वा ऽग्ने यावदिच्छा तावद्गायत्रीमंत्रेण स्वाहान्तेन होमं कुर्यात् ॥ अग्नये परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय च होत्रं हवनं यस्मिन् कर्मणि क्रियते तदग्निहोत्रम् ॥ सुगन्थिपुष्टिमिष्टबुद्धिवृद्धिशौर्य्यधैर्य्यबलकररोगनाशकरैर्गुणैर्युक्तानां द्रव्याणां होमकरणेन वायुवृष्टिजलयोः शुद्धया पृथिवीस्थपदार्थानां सर्वेषां शुद्धवायुज-

लयेागादत्यन्तोत्तमतया॥ सर्वेषां जीवानां परमसुखं भवत्येवातः। तत्कर्मकर्तॄणां जनानां तदुपकारतयाऽत्यन्तसुखलाभेा भवतीश्वरप्रसन्नताचेत्येतदाद्यर्थमग्निहोत्रकरणम्॥

॥ भाषार्थ ॥

(सूर्य्योज्यो०) जेा चराचर का आत्मा प्रकाश स्वरूप और सूर्य्यादि प्रकाशक लेाकेां का भी प्रकाशक है। उसकी प्रसन्नता के लिये हम लेाग हेाम करते हैं। (सूर्य्योर्व्व०) जेा सूर्य्य परमेश्वर हमको सब विद्याओं का देने वाला और हम लेागेां से उनका प्रचार कराने वाला है उसी के अनुग्रह से हम लेाग अग्निहोत्र करते हैं (ज्योतिः सूर्य्यः०) जेा आप प्रकाशमान और जगत्का प्रकाश करने वाला सूर्य्य अर्थात् सब संसार का ईश्वर है उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लेाग हेाम करते हैं (सजूर्देवेन०) जेा परमेश्वर सूर्य्यादि लेाकेां में व्यापक, वायु और दिन के साथ परिपूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला, और सब के अंग२ में व्याप्त है। वह अग्नि परमेश्वर हम को विदित हेा॥ उस के अर्थ हम हेाम करते हैं॥ इन चार आहुतियेां को प्रातःकाल अग्निहोत्र में करना चाहिये (अग्निर्ज्योति०) अग्नि जेा परमेश्वर ज्योतिः स्वरूप है उसकी आज्ञा से हम परोपकार के लिये हेाम करते हैं। और उसका रचा हुआ जेा यह भौतिकाग्नि है जिसमें द्रव्य डालते हैं सेा इस लिये है कि उन द्रव्यों को परमाणु करके जल और वायु वृष्टि के साथ मिला के उन को शुद्ध करदे जिससे सब संसार सुखी हेाके पुरुषार्थी हेा (अग्निर्व्वर्च्चो०) अग्नि जेा परमेश्वर वर्च्च अर्थात् सब विद्याओं का देने वाला तथा भौतिक

अग्नि आरोग्य और बुद्धि बढ़ाने का हेतु है इस लिये हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं यह दूसरी आहुती हुई तीसरी आहुती प्रथम मंत्र से मौन करके करनी चाहिये और चौथी (सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक, वायु और रात्रि के साथ पूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला और सब के अंग २ में व्याप्त है वह अग्नि परमेश्वर हम को प्राप्त हो जिस के लिये हम होम करते हैं ॥ अब जिन मंत्रों से दोनो समय में होम कियाजाता है उनको लिखते हैं (ओं भू०) इन मंत्रों में जो २ नाम हैं वे सब ईश्वर केही जानो ॥ उनके अर्थ गायत्री मंत्र के अर्थ में देखने योग्य हैं और (आपो०) आप जो प्राण परमेश्वर के प्रकाश को प्राप्त होके रस अर्थात् नित्यानंद मोक्ष स्वरूप है उस ब्रह्म को प्राप्त होकर तीनों लोकों में हम लोग आनंद से विचरें ॥ इस प्रकार प्रातः और सायंकाल संध्योपासन के पीछे इन पूर्वोक्त मंत्रों से होम करके अधिक होम करने की जहां तक इच्छा हो वहां तक स्वाहा अन्त में पढ़कर गायत्री मन्त्र से होम करें ॥ अग्नि वा परमेश्वर के लिये जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञा पालन के अर्थ होत्र जो हवन अर्थात् दान करते हैं। उसे अग्निहोत्र कहते हैं। केशर कस्तूरी आदि सुगन्ध घृतदुग्ध आदि पुष्ट, गुड़ शर्करा आदि मिष्ट, तथा सोमलतादि ओषधि रोग नाशक जो ये चार प्रकार के बुद्धि वृद्धि, शूरता, धीरता, बल, और आरोग्य करने वाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं उनका होम करने से पवन और वर्षा जल की शुद्धि करके शुद्ध पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों को जो अत्यन्त उत्तमता होती है

उससे सब जीवों को परम सुख होता है। इस कारण उस अग्निहोत्र कर्म्म करने वाले मनुष्यों को भी जीवों के उपकार करने से अत्यन्त सुख का लाभ होता है। तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है। ऐसे २ प्रयोजनों के अर्थ अग्निहोत्रादि का करना अत्यन्त उचित है॥ इत्यग्निहोत्रविधिः समाप्तः॥

॥ अथ तृतीयः पितृयज्ञः॥

तस्य द्वौ भेदौस्तः। एकस्तर्पणाख्यो द्वितीयः श्राद्धाख्यश्च॥ तत्र येन कर्म्मणा विदुषो देवानृषीन् पितॄंश्च तर्पयन्ति सुखयन्ति तत् तर्पणम्॥ तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धं वेदितव्यम्। तदेतत् कर्म विद्वत्सु विद्यमानेष्वेव घटयते। नैव मृतकेषु। कुतः। तेषां सन्निकर्षाभावे न सेवनाशक्यत्वात्। मृतकोद्देशेन यत्क्रियते नैव तेभ्यस्तत्प्राप्तं भवतीति व्यर्थापत्तेः। तस्माद्विद्यमानाभिप्रायेणैतत्कर्म्मोपदिश्यते। सेव्यसेवकसंनिकर्षात्सर्वमेतत्कर्तुं शक्यतइति। तत्र सत्कर्तव्यास्त्रयः सन्ति। देवाः। ऋषयः। पितरश्च। तत्र देवेषु प्रमाणम्॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः॥ पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ य० अ० १९ मं० ३९॥

द्वयं वा ऽइदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या उदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति

तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति ॥ सवै सत्यमेव वदेत् । एतद्धि वैदेवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्ते यशोयशोह भवति यएवं विद्वांत्सत्यं वदति ॥ शत० का० १ अ० १ । ब्रा० १ कं० ४ । ५ विद्वाꣳसो हि देवाः शत० कां० ३ अ० ७ ब्रा० ६ कं० १० ।

॥ भाष्यम् ॥

(पुनन्तु०) हे (जातवेदः) परमेश्वर (मा) मां (पुनीहि) सर्वथा पवित्रं कुरु भवन्निष्ठाभवदाज्ञापालिनो (देवजनाः) विद्वांसः श्रेष्ठा ज्ञानिनो विद्यादानेन (मा) मां (पुनन्तु) (पवित्रं कुर्व्वन्तु तथा (पुनन्तु मनसा धियः) भवद्दत्तविज्ञानेन भवद्विषयध्यानेन वा नो बुद्धयः पुनन्तु पवित्रा भवन्तु (पुनन्तु विश्वाभूता०) विश्वानि सर्वाणि संसारस्थानि भूतानि पुनन्तु भवत्कृपया पवित्राणि सुखानन्दयुक्तानि भवन्तु । (द्वयं वा०) मनुष्याणां द्वाभ्यां लक्षणाभ्यां द्वे एव संज्ञे भवतः । देवाः । मनुष्याश्चेति । तत्र सत्यं चैवानृतं च कारणेस्तः (सत्यमेव०) यत्सत्यवचनं सत्यमानं सत्यं कर्मैतद्देवानां लक्षणं भवति तथैतदनृतं वचनमनृतंमानमनृतं कर्म चेति मनुष्याणाम् । यो नृतात् पृथग्भूत्वा सत्यमुपेयात् स देवजातौ परिगण्यते । यश्च सत्यात् पृथग्भूत्वा नृतमुपेयात्स मनुष्यसंज्ञां लभेत तस्मा-

त्सत्यमेव सर्वदा वदेन्मन्येत्कुर्य्याच्च यत्सत्यं व्रतमस्ति तदेव देवा आचरन्ति स यशस्विनां मध्ये यशस्वीति देवो भवति तद्विपरीतो मनुष्यश्च तस्मादेव विद्वांसएव देवास्सन्तीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं। उसके दो भेद हैं एक तर्पण। दूसरा श्राद्ध। तर्पण उसे कहते हैं जिस कर्म से विद्वान् रूप देव ऋषि और पितृयों को सुखयुक्त करते हैं। उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करना है सो श्राद्ध कहाता है। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है मृतकों में नहीं क्योंकि उनकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है। इसीसे उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती किन्तु जो उनका नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता इसलिये मृतकों को सुख पहुंचाना सर्वथा असंभव है। इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से तर्पण और श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम होसकता है। तर्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन है। देव ऋषि और पितर ॥ उनमें से देवों में प्रमाण (पुनन्तु०) हे जातवेद परमेश्वर आप सब प्रकार से मुझ को पवित्र करें। जिनका चित्त आप में है तथा जो आप की आज्ञा पालते हैं वे विद्वान् श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष भी विद्यादान से मुझको पवित्र करें। उसी प्रकार आप का दिया जो विशेष ज्ञान वा आप के विषय का ध्यान उससे हमारी बुद्धि पवित्र हो (पुनन्तु विश्वाभूतानि०) और संसार के

सब जीव आप की कृपा से पवित्र और आनन्द युक्त हों (द्वयं वा०) दो लक्षणों से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं अर्थात् देव और मनुष्य। वहां सत्य और झूंठ दो कारण हैं। (सत्यमेव०) जो सत्य बोलने सत्य मानने और सत्य कर्म करने वाले हैं वे देव। और वैसे ही झूंठ बोलने झूंठ मानने और झूंठ कर्म करने वाले मनुष्य कहाते हैं। जो झूंठ से अलग होके सत्य को प्राप्त होवें वे देव जाति में गिने जाते हैं। और जो सत्य से अलग होके झूंठ को प्राप्त हों वे मनुष्य असुर और राक्षस कहे हैं। इससे सब काल में सत्य ही कहे माने और करे। सत्यव्रत का आचरण मनुष्य यशस्वियों में यशस्वी होने से देव और उससे उलटे कर्म करने वाला असुर होता है। इस कारण से यहां विद्वान् ही देव हैं॥

॥ आर्षप्रमाणम् ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ य० अ० ३१ मं० ९॥ अथ यदेवानुब्रुवीत। तेनार्षेभ्य ऋणं जायते तद्भ्य एतत्करोत्यृषीणां निधिगोप इतिह्यनूचानमाहुः॥ शत० का० १ अ० ७ कं० ३॥ अथार्षेयं प्रवृणीते। ऋषिभ्यश्चैवैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेदयत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति तस्मादार्षेयं प्रवृणीते॥ शत० का० १ अ० ४ कं० ३॥

॥ भाष्यम् ॥

तं यज्ञमितिमन्त्रः सृष्टिविद्याविषये व्याख्यातः । (अथ यदेवा०) अथेत्यनंतरं यत्सर्वविद्यां पठित्वानुवचनमध्यापनं कर्मास्ति तदृषिकृत्यमस्ति । तेनाध्ययनाध्यापनकर्मणर्षिभ्यो देयमृणं जायते । यत्तेषामृषीणां सेवनं करोति तदेतत्तेभ्य एव सुखकारि भवति । यः सर्वविद्याविद्भूत्वा ध्यापयति तमनूचानमृषिमाहुः । (अथार्षेयं प्रवृणीते०) यो मनुष्यः पठित्वा पठनाख्यं कर्म प्रवृणीते तदार्षेयं कर्मास्ति । य एवं कुर्वन्ति तेभ्यऋषिभ्यो देवेभ्यश्चैतत्प्रियकरं वस्तुसेवनं च निवेदयति सोयं विद्वान् महावीर्य्यभूत्वा यज्ञं विज्ञानाख्यं (प्रापत्) प्राप्नोति तेचैनं विद्यार्थिनं विद्वांसं कुर्य्युः । यश्च विद्वानस्ति यश्चापि विद्यां गृह्णाति स ऋषिसंज्ञां लभते । तस्मादिदमार्षेयं कर्म सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकार्य्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(तं यज्ञ०) इस मंत्र का अर्थ भूमिका के सृष्टि विद्या विषय में कह दिया है ॥ अब इसके अनंतर सब विद्याओं को पढ़के जो पढ़ावना है वह ऋषिकर्म कहाता है। उस पढ़ने और पढ़ावने से ऋषियों का ऋण अर्थात् उनको उत्तम २ पदार्थ देने से निवृत्त होता है । और जो उन ऋषियों की सेवा करता है वह उनको सुख करने वाला होता है.(निधिगोपः) यही व्यवहार अर्थात् विद्या कोश का रक्षा करने वाला होता है । जो सब विद्याओं को

ज्ञान के सब को पढ़ाता है उसको ऋषि कहते हैं ॥ (अथार्षेयं प्रवृणीते०) जो पढ़के पढ़ाने के लिये विद्यार्थि का स्वीकार करना है सो आर्षेय अर्थात् ऋषियों का कर्म कहाता है जो उस कर्म को करते हैं उन ऋषियों और देवों के लिये प्रसन्न करने वाले पदार्थों का निवेदन करता है वह विद्वान् अति पराक्रमी होके विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है ॥ जो विद्वान् और विद्या को ग्रहण करने वाला है उसका ऋषि नाम होता है । इस कारण से इस आर्षेय कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥

॥ अथ पितृषु प्रमाणम् ॥

ऊर्ज्जं वहन्ती रमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ॥
स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ य० अ० २ मं० ३४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(ऊर्ज्जं वहन्ती०) ईश्वरः सर्वान्प्रत्याज्ञां ददाति सर्वे मनुष्या एवं जानीयुर्वदेयुश्चाचरेयुरिति । मे पितॄन् मम पिता पितामहादीन् आचार्य्यादींश्च यूयं सर्वेमनुष्याः तर्पयत सेवया प्रसन्नान् कुरुत तथा (स्वधास्थ) सत्यविद्याभक्तिस्वपदार्थधारिणो भवत । केन केन पदार्थेन ते सेवनीया इत्याह । ऊर्ज्जं पराक्रमं प्रापिकाः सुगन्धिताहृद्या अपस्तेभ्यो नित्यं ददुः (अमृतं) अमृतात्मकमनेकविधरसं (घृतं) आज्यं (पयः) दुग्धं (कीलालं) अनेकविधसंस्कारैः सम्पादितमन्नं मात्रिकं मधु च (परिस्रुतं) कालपक्वं फलादिकं च दत्त्वा पितॄन् प्रसन्नान्कुर्य्युः ॥ १॥

॥ भावार्थ ॥

(ऊर्ज्जं वहन्ती०) पिता वा स्वामी अपने पुत्र पौत्र स्त्री वा नौकरों को सब दिन के लिये आज्ञा दे के कहै कि (तर्पयत मे पितॄन्) जो पिता पितामहादि माता मातामहादि तथा आचार्य्य और इन से भिन्न भी विद्वान् लोग अवस्था अथवा ज्ञान से वृद्ध मान्य करने के योग्य हों उन सब के आत्माओं को यथा योग्य सेवा से प्रसन्न किया करो। सेवा करने के पदार्थ ये हैं। (उर्ज्जं वहन्ती) जो उत्तम २ जल (अमृतम्) अनेकविधरस (घृतं) घी (पयः) दूध (कीलालं) अनेक संस्कारों से सिद्ध किए रोग नाशकरनेवाले उत्तम २ अन्न (परिस्रुतम्) सब प्रकार के उत्तम २ फल हैं इन सब पदार्थों से उनकी सेवा सदा करते रहो जिससे उनका आत्मा प्रसन्न होके तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे कि उससे तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो (स्वधास्थ०) हे पूर्वोक्त पितृ लोगो तुम सब हमारे अमृतरूप पदार्थों के भागों से सदा सुखी रहो। और जिस जिस पदार्थ की तुमको अपने लिये इच्छा हो जो जो हम लोग कर सकें उस २ की आज्ञा सदा करते रहो। हम लोग मन वचन कर्म से तुम्हारे सुख करने में स्थित हैं। तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाओ। जैसे तुम लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्य्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है वैसे हम को भी आप लोगों का प्रत्युपकारना अवश्य चाहिये। जिससे हमको कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो ॥ १ ॥

॥ अथ पितॄणां परिगणनम् ॥

येषां पितृसंज्ञा ये सेवितुं योग्याश्च ते क्रमशो लिख्यन्ते । सोमसदः । अग्निष्वात्ताः । बर्हिषदः । सोमपाः । हविर्भुजः । आज्यपाः । सुकालिनः । यमराजाश्चेति ।

॥ भाष्यम् ॥

(सो०) सोमे ईश्वरे सोमयागे वा सीदन्ति ये सोमगुणाश्च ते सोमसदः ॥ (अ०) अग्निरीश्वरः सुष्ठुतया आत्तो गृहीतो यैस्ते अग्निष्वाताः यद्वा अग्नेर्गुणज्ञानात्पृथिवी, जल, व्योम, यानयंत्ररचनादिका, पदार्थविद्या सुष्ठुतया आत्ता गृहीता यैस्ते । (ब०) बर्हिषि सर्वोत्कृष्टे ब्रह्मणि शमदमादिषूत्तमेषुगुणेषु वा सीदन्ति ते बर्हिषदः (सो०) यज्ञेनोत्तममोषधिरसं पिबन्ति पाययन्ति वा ते सोमपाः । (ह०) हविर्हुतमेव यज्ञेन शोधितं वृष्टिजलादिकं भोक्तुं भोजयितुं वा शीलमेषां ते हविर्भुजः । (आ०) आज्यं घृतम् । यद्वा अजगति क्षेपणयोर्धात्वर्थादाज्यं विज्ञानम् । तद्वानेन पान्ति रक्षन्ति पाययन्ति रक्षयन्ति ये विद्वांसस्ते । आज्यपाः । (सु०) ईश्वरविद्योपदेशकरणस्य ग्रहणस्य च शोभनः कालो येषां ते । यद्वा ईश्वरज्ञानप्राप्या सुखरूपः सदैव कालो येषां ते । (य०) ये पक्षपातं विहाय न्यायव्यवस्थाकर्त्तारस्सन्ति ते यमराजाः ॥

॥ भाषार्थ ॥

(सो०) जो ईश्वर और सोमयज्ञ में निपुण और जो शान्त्यादिगुण सहित हैं वे सोमसद कहाते हैं। (अ०) अग्नि जो परमेश्वर वा भौतिक उनके गुण ज्ञान करके जिनने अच्छे प्रकार अग्नि विद्या सिद्ध की है उनको अग्निष्वात्ता कहते हैं। (ब०) जो सब से उत्तम परब्रह्म में स्थिर होके शमदम सत्यविद्यादि उत्तम गुणों में प्रवर्त्तमान हैं उनको बर्हिषद कहते हैं। (सो०) जो यज्ञ करके सोमलतादि उत्तम ओषधियों के रस के पान करने और कराने वाले हैं तथा जो सोम विद्या को जानते हैं उनको सोमपा कहते हैं (ह०) जो अग्निहोत्रादि यज्ञ करके वायु और वृष्टि जल की शुद्धिद्वारा सब जगत् का उपकार करते और जो यज्ञ में अन्नजलादि को शुद्ध करके खाने पीने वाले हैं उन को हविर्भुज कहते हैं (आ०) आज्य कहते हैं घृत स्निग्धपदार्थ और विज्ञान को जो उसके दान से रक्षा करने वाले हैं उनको आज्यप कहते हैं। (सु) मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर ईश्वर और सत्यविद्या के उपदेश का जिनका श्रेष्ठ समय और सदा उपदेश में ही वर्त्तमान हैं उनको सुकालिन कहते हैं। (य०) जो पक्षपात को छोड़ के सदा सत्य व्यवस्था न्याय ही करने में रहते हैं उन को यमराज कहते हैं ॥

पितृपितामहप्रपितामहाः । मातृपितामहीप्रपितामह्यः । सगोत्राः । सबन्धिनः ॥

॥ भाष्यम् ॥

(पि०) ये सुष्ठुतया श्रेष्ठान् विदुषो गुणान् वासयन्तस्तत्र वसन्तश्च विज्ञानाद्यनन्तधनाः स्वान् जनान् धारयन्तः पोषयन्तश्चतुर्विंशतिवर्षपर्य्यन्तेन ब्रह्मचर्य्येण विद्याभ्यासकारिणः स्वे जनकाश्च सन्ति ते पितरो विज्ञेयाः ॥ (पिता०) ये पक्षपातरहितादुष्टान् रोदयन्तश्च चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्तेन ब्रह्मचर्य्यसेवनेन कृतविद्याभ्यासास्ते रुद्राः स्वे पितामहाश्च ग्राह्यास्तथा रुद्र ईश्वरोऽपि ॥ (प्रपि०) आदित्यवदुत्तमगुणप्रकाशका विद्वांसोऽष्टचत्वारिंशद्वर्षेण ब्रह्मचर्य्येण सर्वविद्यासंपन्नाः सूर्य्यवद्विद्याप्रकाशाः स्वे प्रपितामहाश्च ग्राह्यास्तथाऽऽदित्योऽविनाशीश्वरो वात्र गृह्यते ॥ (मा०) पित्रादिसदृश्यो मात्रादयः सेव्याः ॥ (स०) ये स्वसमीपं प्राप्ताः पुत्रादयस्ते श्रद्धया पालनीयाः ॥ (आ० सं०) ये गुर्वादिसख्यन्तास्सन्ति ते हि सर्वदा सेवनीयाः ॥ इति पितृयज्ञविधिः समाप्तः ॥

॥ भाषार्थ ॥

जो वीर्य्य के निषेकादि कर्मों करके उत्पत्ति और पालन करे और चौबीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम से विद्या को पढ़े उसका नाम पिता और वसु है (पिता०) जो पिता का पिता हो और जो चवालीश वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम से विद्या पढ़ के सब जगत् का उपकार करता हो उसको प्रपितामह और आदित्य कहते हैं। तथा जो पित्रादिकों के समतुल्य पुरुष हैं उनको भी

पित्रादिकों के समतुल्य सेवा करनी चाहिये। (मा०) पित्रादिकों के समान विद्या स्वभाववालीं स्त्रियों की भी अत्यन्त सेवा करनी चाहिये (सगो०) जो समीप वर्त्तो ज्ञाति के योग्य पुरुष हैं वे भी सेवा करने के योग्य हैं (आचार्य्यादि सं०) जो पूर्णविद्या के पढ़ानेवाले और श्वसुरादि संबंधी तथा उनकी स्त्री हैं उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये ॥

एतेषां विद्यमानानां सोमसदादीनां सुखार्थं प्रीत्या यत्सेवनं क्रियते तत्तर्पणम् श्रद्धया यत्सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धम् ॥

ये सत्यविज्ञानदानेन जनान् पान्ति रक्षन्ति ते पितरो विज्ञेयाः ॥ अत्र प्रमाणानि ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासइत्यादीनि यजुर्वेदस्यैकोनविंशतितमेऽध्याये सप्तसु सोमषदादिषु पितृषु द्रष्टव्यानि। तथा। ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। इत्यादीनि यमराजेषु। पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः। इत्यादीनि पितृपितामहप्रपितामहादिषु। एवं नमो वः पितरो रसायेत्यादीनि पितृणां सत्कारे च। इति ऋग्यजुरादिवचनानि सन्तीति बोध्यम् अन्यच्च ॥ वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् ॥ प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ॥ १ ॥ मनु० अ० ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

जो सोमसदादि पितर विद्यमान अर्थात् जीवते हों उनका प्रीति से सेवनादि से तृप्त करना तर्पण और श्रद्धा से अत्यन्त

प्रीति पूर्वक सेवन करना है सो श्राद्ध कहाता है। इस विषय में प्रमाण। जो सत्य विज्ञान दान से जनों को पालन करते हैं वे पितर हैं॥ ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः। इत्यादि मंत्र सोमषदादि सातों पितृयों में प्रमाण हैं। ये समानाः समनसः पितरो यमाराज्ये। इत्यादि मंत्र यमराजों। पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः। इत्यादि मंत्र पितृ पितामह प्रपितामादिकों तथा। नमो वः पितरो रसायेत्यादि मंत्र पितृयों के सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं। ये ऋग्यजुर्वेद आदि के वचन हैं॥ और मनुजी ने भी कहा है कि। पितृयों को वसु। पितामहों को रुद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहते हैं यह सनातन श्रुति है॥ मनु० अ० ३॥ इति पितृयज्ञविधिः समाप्तः॥

॥ अथ बलिवैश्वदेवविधिर्लिख्यते ॥

यदन्नं पक्वमन्नारलवणं भोजनार्थं भवेत्तेनैव बलिवैश्वदेवकर्म-कार्य्यम्। वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्॥ आभ्यः कुर्य्याद्देव ताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥ मनु० अ० ४

॥ अत्र बलिवैश्वदेवकर्म्मणि प्रमाणम् ॥

अहंरहर्बलिमित्तेहरन्तोऽश्वायेव तिष्ठतेघासमग्ने॥ रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मातें अग्ने प्रतिवेशारिषाम॥ १॥ अथर्व० का० १९ अनु० ७ मं० ७॥ पुनन्तु मा

देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ २ ॥ य० अ० १९ मं० ३९ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(पुनन्तु०) अस्यार्थो देवप्रकरणे उक्तः ॥ (अहरहर्बलि०) हे अग्ने परमेश्वर ये भवदाज्ञया बलिवैश्वदेवं नित्यं कुर्वन्तो मनुष्याः (रायस्पोषेण समिषा) चक्रवर्त्तिराज्यलक्ष्म्या घृतदुग्धादिपुष्टिकारकपदार्थप्राप्त्या च सम्यक् शुद्धेच्छया (मदन्तः) नित्यानन्दंप्राप्ताः सन्तः। मातुः पितुराचार्य्यादीनां चोत्तमपदार्थैः प्रीतिपूर्विकां सेवां नित्यं कुर्युः (अश्वायेव तिष्ठते घासं) यथाश्वस्य सन्मुखे तद्भक्ष्यं तृणवीरुधादि वा तत्पानार्थं जलादिपुष्कलं स्थाप्यते तथा सर्वेषां सेवनाय बहून्युत्तमानिवस्तूनि दद्युर्यस्ते प्रसन्ना भवेयुः (माते अग्ने प्रतिवेशारिषाम) हे परमगुरो अग्ने परमेश्वर भवदाज्ञातो ये विरुद्धव्यवहारास्तेषु वयं कदाचिन्नप्रविशेम। अन्यायेन कदाचित्प्राणिनः पीडां न दद्याम। किन्तु सर्वान् स्वमित्राणीव स्वयं सर्वेषां मित्रमिवेति ज्ञात्वा परस्परमुपकारं कुर्य्यामेतीश्वराज्ञास्ति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(पुनन्तु०) इस का अर्थ देव तर्पण विषय में कर दिया है (अहरहर्बलि०) हे अग्ने परमेश्वर आप की आज्ञा से नित्य प्रति बलि वैश्वदेव कर्म करते हुए। हम लोग (रायस्पोषेण समिषा)

चक्रवर्त्तिराज्यलक्ष्मी घृतदुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और सम्यक् शुद्ध इच्छा से (मदन्तः) नित्य आनन्द में रहें। तथा माता पिता आचार्य्य आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीति पूर्वक सेवा करते रहें (अश्वायेव तिष्ठते घासं) जैसे घोड़े के सामने बहुत से खाने वा पीने के पदार्थ धर दिये जाते हैं वैसे सब की सेवा के लिये बहुत से उत्तम उत्तम पदार्थ देवें जिन से वे प्रसन्न होके हम पर नित्य प्रसन्न रहें॥ (माते अग्ने प्रतिवेशारिषाम) हे परम गुरु अग्नि परमेश्वर आप और आप की आज्ञा से विरुद्ध व्यवहारों में हम लोग कभी प्रवेश न करें और अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुंचावें किन्तु सब को अपना मित्र और अपने को सब का मित्र समझ के परस्पर उपकार करते रहें॥

॥ अथ होममंत्राः ॥

ओमग्नये स्वाहा॥ ओं सोमाय स्वाहा॥ ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥ ओं धन्वन्तरये स्वाहा॥ ओं कुह्वै स्वाहा॥ ओमनुमत्यै स्वाहा॥ ओं प्रजापतयेस्वाहा॥ ओं सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा॥ ओं स्विष्टकृते स्वाहा॥

॥ भाष्यम् ॥

(ओम०) अग्न्यर्थ उक्तः (ओं सो०) सर्वानन्दप्रदो यः सर्वजगदुत्पादक ईश्वरः सोऽत्र ग्राह्यः (ओम्वि०) विश्वेदेवा

विश्वप्रकाशका ईश्वरगुणाः सर्वे विद्वांसो वा (ओं धन्व०) सर्वरोगनाशक ईश्वरोऽत्र गृह्यते। (ओं कु०) दर्शेष्ट्यर्थमारम्भः। अमावास्येष्टि प्रतिपादितायै चितिशक्तये वा (ओम०) पौर्णमास्येष्ट्यर्थमारम्भः। विद्यापठनानन्तरमतिर्मननं ज्ञानं यस्याश्चितिशक्तेः सा चितिरनुमतिर्वा (ओं प्र०) सर्वजगतः स्वामी रक्षक ईश्वरः (ओं सह०) ईश्वरेण प्रकृष्टगुणैः सहोत्पादितयोः पुष्टिकरणाय। (ओं स्विष्ट०) यः सुष्ठु शोभनमिष्टं सुखं करोति सचेश्वरः। एतैर्मन्त्रैर्होमं कृत्वाथ बलिप्रदानं कुर्य्यात्॥

॥ भाषार्थ ॥

(ओम०) अग्निशब्दार्थ कह आये हैं (ओं सो०) जो सब पदार्थों को उत्पन्न और पुष्ट करने से सुख देनेहारा है उसको सोम कहते हैं (ओम०) जो प्राण सब प्राणियों के जीवन का हेतु और जो अपान अर्थात् दुःख के नाश का हेतु है इन दोनों को अग्नीषोम कहते हैं॥ (ओं वि०) यहां संसार को प्रकाश करने वाले ईश्वर के गुण अथवा विद्वान् लोगों को विश्वेदेव शब्द से ग्रहण होता है (ओं ध०) जो जन्ममरणादि रोगों का नाश करनेहारा परमात्मा वह धन्वन्तरि कहाता है (ओं कु०) जो अमावास्येष्टि का करना है (ओम०) जो पौर्णमास्येष्टि वा सर्व शास्त्र प्रतिपादित परमेश्वर की चिति शक्ति है यहां उस का ग्रहण है। (ओं प्र०) जो सब जगत् का स्वामी जगदीश्वर है वह प्रजापति कहाता है (ओं स०) यह प्रयोग पृथिवी का राज्य और सत्यविद्या से प्रकाश के लिये है (ओं स्वि०) जो इष्ट सुख करनेहारा

परमेश्वर है वही स्विष्टकृत कहाता है। ये दश अर्थ दश मंत्रों के हैं। अब बलिदान के मंत्रों को लिखते हैं॥

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ओं सानुगाय यमाय नमः। ओं सानुगाय वरुणाय नमः। ओं सानुगाय सोमाय नमः। ओं मरुद्भ्यो नमः। ओमद्भ्यो नमः। ओं वनस्पतिभ्यो नमः। ओं श्रियै नमः। ओं भद्रकाल्यै नमः। ओं ब्रह्मपतये नमः। ओं वास्तुपतये नमः। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। ओं सर्वात्मभूतये नमः। ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः॥

॥ भाष्यम् ॥

(ओं सा०) णमप्रह्वत्वेशब्देचेत्यनेन सत्क्रियापुरस्सरविचारेण मनुष्याणां यथार्थविज्ञानं भवतीति वेद्यम्। नित्यैर्गुणैस्सहवर्त्तमानः परमैश्वर्य्यवानीश्वरोचेन्द्रशब्देन गृह्यते। (ओं सानु०) पक्षपातरहितो न्यायकारित्वादिगुणयुक्तः परमात्माच यमशब्दार्थेन वेद्यः। (ओं सा०) विद्याद्युत्तमगुणविशिष्टः सर्वोत्तमः परमेश्वरोच वरुणशब्देन ग्रहीतव्यः। (ओं सानुगाय सो०) अस्यार्थ उक्तः। (ओं म०) यदीश्वराधारेण सकलं विश्वं धारयन्ति चेष्टयन्त्यर्थेन गृह्यन्ते ते अच मरुतो गृह्यन्ते (ओम)

अस्यार्थः शन्नोदेवीरित्यत्रोक्तः । (ओं व) वनानां लोकानां पतय ईश्वरगुणाः परमेश्वरो वा बहुवचनमादरार्थम् । यद्वोत्तमगुणयोगेनेश्वरेणोत्पादितेभ्यो महावृत्तेभ्यश्चेति बोध्यम् । (ओं श्रि०) श्रीयते सेव्यते सर्वैर्जनैस्सः श्रीरीश्वरस्सर्वसुखशोभावत्वाद् गृह्यते । यद्वा तेनोत्पादिता विश्वशोभाच । (ओं भ०) भद्रं कल्याणं सुखं कालयितुं शीलमस्याः सा भद्रकालीश्वरशक्तिः । (ओम्ब्र०) ब्रह्मणः सर्वशास्त्रविद्यायुक्तस्य वेदस्य ब्रह्माण्डस्य वा पतिः रीश्वरः । (ओं वा०) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिंस्तद्वास्त्वाकाशं तत्पतिरीश्वरः । (ओं वि०) अस्यार्थ उक्तः । (ओं दि०) (ओं नक्तं०) ईश्वरकृपयैवं भवेद् दिवसे यानिभूतानि विचरन्ति । रात्रौ च तान्यस्मासु विघ्नं मा कुर्वन्तु तैः सहास्माकमविरोधोस्तु । एतदर्थायमारम्भः । (ओं स०) सर्वेषां जीवात्मनां भूतिर्भवनं सतेश्वरो नान्यः) ओं पि०) अस्यार्थ पितृतर्पणे प्रोक्तः । नमइत्यस्य निरभिमानद्योतनार्थः परस्योत्कृष्टतया मान्यज्ञापनार्थश्चारम्भः ॥

॥ भावार्थ ॥

(ओं सा०) जो सर्वैश्वर्ययुक्त परमेश्वर और जो उसके गुण हैं वे सानुग इन्द्र शब्द से ग्रहण होते हैं ॥ (ओं सा०) जो सत्य न्याय करने वाला ईश्वर और उसकी सृष्टि में सत्य न्याय के करने वाले सभासद हैं वे (सानुगयम) शब्दार्थ से ग्रहण होते हैं (ओं सा०) जो सब से उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्त हैं वे

सानुग वरुण शब्दार्थ से जानना चाहिये (ओं सा०) पुण्यात्माओं को आनंदित करने वाला और पुण्यात्मा लोग हैं वे सानुग सोम शब्द से ग्रहण किये हैं (ओं मरु०) जो प्राण अर्थात् जिन के रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है उनको मरुत् कहते हैं इनकी रक्षा करनी अवश्य चाहिये। (ओंमद्भो०) इसका अर्थ शब्देदेवी इस मंत्र के अर्थ में लिखा है (ओं व०) जिनसे वर्षा अधिक होती और जिनके फलादि से जगत् का उपकार होता है उनको भी रक्षा करनी योग्य है। (ओं श्रि०) जो सब के सेवा करने योग्य परमात्मा है उसकी सेवा से राज्यश्री की प्राप्ति के लिये सदा उद्योग करना चाहिये। (ओं भ०) जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति अर्थात् सामर्थ्य है उसका सदा आश्रय करना चाहिये (ओं ब्र०) जो वेद का स्वामी ईश्वर है उस की प्रार्थना और उद्योग विद्या प्रचार के लिये अवश्य करना चाहिये। जो (ओं वा०) वास्तुपति गृहसंबंधी पदार्थों का पालन करने हारा मनुष्य अथवा ईश्वर है इनका सहाय सर्वत्र होना चाहिये (ओं वि०) इसका अर्थ कह दिया है (ओं दि०) जो दिन में विचरने वाले प्राणियों से उपकार लेना और उनको सुख देना है सो मनुष्य जाति का ही काम है। (ओं नक्तं०) जो रात्रि में विचरने वाले प्राणी हैं उनसे भी उपकार लेना और जो उनको सुख देना इस लिये यह प्रयोग है (ओं सर्वात्म०) सब में व्याप्त परमेश्वर की सत्ता को सदा ध्यान में रखना चाहिये। (ओं माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, पुत्र, भृत्यादिकों को भोजन पश्चात् गृहस्थ को भोजनादि करना चाहिये ॥ स्वाहा

अर्थ पूर्व कर दिया है। और नमः शब्द का अर्थ यह है कि आप अभिमान रहित होके दूसरे का मान्य करना है ॥ इसके पीछे के भागों को लिखते हैं ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ १ ॥

अनेन षड् भागान् भूमौ दद्यात् । एवं सर्वप्राणिभ्यो भागान् विभज्य दत्वा च तेषां प्रसन्नतां सम्पादयेत् ॥ इति बलिवैश्वदेव-विधिः समाप्तः ॥

सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क... 327
दयानन्द महिल...

॥ भावार्थ ॥

कुत्तों कंगालों कुष्ठी आदि रोगियों काक आदि पक्षियों और चिंटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग अलग बांट के देदेना और उनकी प्रसन्नता सदा करना । यह वेद और मनुस्मृति की रीति से बलिवैश्वदेव की विधि लिखी ॥

॥ अथ पञ्चमोऽतिथियज्ञः प्रोच्यते ॥

यत्रातिथीनां सेवनं यथावत् क्रियते तत्रैव कल्याणं भवति ये पूर्णविद्यावन्तः परोपकारिणो जितेन्द्रिया धार्म्मिकाः स
...द्रिनश्छलादिदोषरहिता नित्यभ्रमणकारिणो मनुष्यास्सन्ति त...
...ीन कथयन्ति । अत्रानेके प्रमाणभूता वैदिकमंत्रास्सन्ति
संक्षेपतो द्वावेव लिखामः ॥